वैदिक गणपति
(वैदिक, वैज्ञानिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं सार्वजनिक स्वरूप)
मदन रहेजा

वैदिक गणपति

(वैदिक, वैज्ञानिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं सार्वजनिक स्वरूप)

लेखक
मदन रहेजा

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

विषय-सूची

क्र० विषय **पृष्ठ**

श्री मदन रहेजा का संक्षिप्त परिचय

श्री मदन रहेजा जैसे सशक्त लेखक एवं आर्यसमाज के सक्रिय सदस्य का परिचय देते हुए मुझे गर्व हो रहा है। मेरा उनसे गत् अनेक वर्षों से परिचय है। 'आर्यसमाज सान्ताक्रुज़' में उनका आगमन सर्वप्रथम ई० सन् 1984 में हुआ। रविवारीय सत्संगों में वैदिक विद्वानों के प्रवचनों से उनमें वैदिक धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। कालांतर में वेद तथा आर्ष ग्रन्थों का गहन स्वाध्याय प्रारम्भ किया और विद्वानों से अपनी शंकाओं का निवारण करते रहे। वे वैदिक धर्म के सिद्धान्तों से इतने प्रभावित हुए कि स्वयं भी अपनी लेखनी के माध्यम से प्रचार-प्रसार में लग गये। वैदिक धर्म के प्रति उनकी दृढ़ आस्था है। वर्तमान में वे 'आर्यजगत्' के शुभ चिन्तक, सक्रिय कार्यकर्त्ता एवं लोकप्रिय लेखक के रूप में जाने जाते हैं।

श्री मदन रहेजा का जन्म अविभाजित भारत के प्रसिद्ध शहर "सक्खर" - सिन्ध में सन् 10 दिसम्बर 1941 को हुआ। सन् 1964 में वे मैकेनीकल इन्जिनियर बने और गत् 46 वर्षों से मुम्बई में फ़ैशन डिज़ाईनर हैं।

श्री मदन रहेजा एक पौराणिक आदर्श सिन्धी (हिन्दू) परिवार [माताश्री स्व० कलावती किशनदास रहेजा (1914-1984) एवं पिताश्री स्व० किशनदास लालचन्द रहेजा (1906-1995)] से हैं। माता जी की मृत्यु की घटना से वे अत्यन्त दुःखी हो गए। इस कारण उनकी मूर्तियों में से आस्था डगमगाने लगी। श्री रहेजा जी ने तब से वेद तथा अनेक आर्ष ग्रन्थों का गहन स्वाध्याय प्रारम्भ किया और अनेक विद्वानों के सम्पर्क से वैदिक धर्म के बारे में जानकारी प्राप्त करते रहे। तभी से ईश्वर की असीम कृपा तथा परोपकार की भावना से उनके वैदिक धर्म से सम्बन्धित अनेक विषयों पर 125 से भी अधिक अंग्रेज़ी और हिन्दी में लेख 'आर्यसमाज सान्ताक्रुज़' (मुम्बई) की मासिक पत्रिका 'निष्काम

परिवर्तन' और आर्यजगत् की अनेक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी सरल लेखनी तथा प्रभावशाली शैली को पाठकों और विद्वानों ने बहुत सराहा है। अपने मित्रों तथा शुभ-चिन्तकों की सलाह मानकर उन्होंने सन् 1996 से पुस्तकें लिखने का कार्य प्रारम्भ किया है जो आज भी अनवरत जारी है।

मनुष्य के जीवन में सत्संगों का प्रभाव अवश्य पड़ता है। मनुष्य चाहे तो वह क्या नहीं कर सकता! श्री मदन रहेजा जी की "वैदिक धर्म" में पूर्ण आस्था है जिसे वे अपने व्यवहार में लाते हैं, किसी अन्धश्रद्धा या पाखंड में विश्वास नहीं करते और दूसरों को भी इसकी प्रेरणा देते रहते हैं। वे 'परम पिता परमात्मा', 'माता-पिता', 'आध्यात्मिक गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वती' तथा आर्ष ग्रन्थों के ऋषियों को ही अपना 'गुरु' मानते हैं। मातृभाषा सिन्धी (फ़ारसी लिपि) होने के अतिरिक्त श्री रहेजा जी उर्दू, हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेज़ी भाषा का भी अच्छा ज्ञान रखते हैं।

श्री मदन रहेजा प्रसन्नचित्त-स्वभाव वाले, स्पष्टवादी, व्यावहारिक और मिलनसार व्यक्तित्व के धनी हैं। किसी भी परिस्थिति में सत्य और न्याय के साथ समझौता नहीं करते। उनका अधिकतम समय धार्मिक लेखों तथा ग्रन्थों को पढ़ने और लिखने में ही व्यतीत होता है। उनकी रुचि आध्यात्मिक सत्संग सुनना, वैदिक विद्वानों से गूढ़ विषयों पर वार्तालाप करना, राष्ट्र और समाज की वर्तमान परिस्थितियों पर लेख लिखना, सर्वहितकारी पुस्तकें लिखना, संगीत सुनना, स्वादिष्ट एवं पौष्टिक व्यंजनों का आनन्द लेना और देश-विदेश की यात्रा करना है।

श्री मदन रहेजा जी को निम्नलिखित पुस्तकें लिखने का श्रेय प्राप्त है:-

1. **(1996) "शंका समाधान"** श्री रहेजा जी की सर्वप्रथम पुस्तक 'शंका समाधान' का प्रकाशन "गोविन्दराम हासानन्द" दिल्ली) द्वारा सन् 1996 में हुआ। इनके कार्य को आर्यजगत्

के सभी वरिष्ठ विद्वानों ने अपनी सहमति प्रदान की प्रशंसा की है। 'शंका समाधान' में मस्तिष्क में उठने वाली 131 शंकाओं का समाधान वैदिक एवं धर्मग्रन्थों के प्रमाणों सहित किया गया है। इस पुस्तक की लोक प्रियता को देखते हुए 'शंका समाधान' का अनुवाद गुजराती भाषा में अहमदाबाद में प्रकाशित हो चुका है। इस किताब का तर्जुमा उर्दू बोली में जम्मू स्थित धर्मप्रेमी कर रहे हैं। देश की अनेक प्रान्तीय भाषाओं में भी इस पुस्तक का अनुवाद जारी है। इस पुस्तक के हिन्दी एवं अंग्रेज़ी के अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। यह पुस्तक देश-विदेश की सभी आर्य समाजों में उपलब्ध है।

2. (1998) **"अन्धविश्वास निर्मूलन"** रहेजा जी की यह द्वितीय हिन्दी पुस्तक सन् 1998 में "गोविन्दराम हासानन्द" (दिल्ली) द्वारा प्रकाशित हुई जिसमें विश्व में प्रचलित 117 अन्धविश्वासों का उन्मूलन सरल हिन्दी भाषा में किया गया है। इस पुस्तक के भी अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।
3. (1999) **"सत्यार्थ-प्रश्नोत्तरी"** 'इस पुस्तक में आर्यसमाज' के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' के चौदह सम्मुलासों की प्रश्नोत्तरी द्वारा आवश्यक जानकारी प्रदान की गई है। यह पुस्तिका हिन्दी तथा उर्दू में उपलब्ध है।
4. (2000) **"यज्ञ-पद्धति-कब, कहाँ, क्यों और कैसे"** 'यज्ञ करने का वैदिक विधि-विधान'।
5. (2000) **"मेरी अन्तिम यात्रा"** अनचाही 'मृत्यु से पहले' ओर 'मृत्यु के बाद' का साक्षात्कार।
6. (2002) **"Quest - The Vedic Answers"** 'शंका समाधान' की 131 के अतिरिक्त 30 और नई शंकाओं का समाधान। देश-विदेश में यह पुस्तक बहुत प्रसिद्ध है।
7. (2002) **"Back to the Vedas"** (अन्य तथाकथित धर्म

ग्रन्थों को छोड़कर मात्र 'वेद को ही क्यों मानें! वैदिक धर्म को ही क्यों अपनाएँ? इस पुस्तक में वेदों की संक्षिप्त रूप से महत्त्पूर्ण जानकारी प्रदान की गई हैं। स्वाध्याय हेतु संग्रहणीय पुस्तक है।)।

8. (2002) **"Peace of Mind"** (अशान्त मन को शान्त करने के अनेक साधन) वक्त के तक़ाज़े को ध्यान में रखते हुए यह पुस्तक लिखी गई है।
9. (2002) **"Religious Guide"** (इस पुस्तक में धार्मिक सत्संग तथा संवादों में प्रचलित शब्दों का सटीक अर्थ, स्पष्टीकरण एवं जानकारी है)।
10. (2009) **"Eradication of Superstitions"** ("अन्धविश्वास निर्मूलन" पुस्तक का अंग्रेज़ी अनुवाद के अतिरिक्त अनेका-नेक शंकाओं, वहमों, भ्रमों, भ्राँतियों, संशयों, अन्धविश्वासों, अन्धश्रद्धाओं और पाखण्ड इत्यादि का वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर उन्मूलन)।
11. (2009) **"वैदिक यज्ञ पद्धति"** (वैदिक तथा आर्ष ग्रन्थों के प्रमाणों सहित 'यज्ञ आचार संहिता")
12. (2009) **"सत्य सनातन वैदिक धर्म"** ('सत्य सनातन वैदिक धर्म' का सही स्वरूप एवं 'सिद्धान्त और मान्यताएँ')
13. (2009) **"सुविचार"** (400 से भी अधिक सर्वहितकारी वैदिक सुविचार संग्रह)
14. (2009) **"बाल प्रश्नोत्तरी"** (आर्यसमाज गान्धीधाम द्वारा संचालित 'प्रभात आश्रम' में पढ़ने वाले बच्चों द्वारा पूछे गए अनेक गहन प्रश्नों के सरल एवं सटीक उत्तर)।
15. (2009) **वैदिक मन्त्र माला** (प्रत्येक अवसर पर उच्चारणी मन्त्र+सन्ध्योपासना विधि + वैदिक यज्ञ पद्धति संक्षिप्त - सरल अर्थों सहित)।
16. (2010) **"वेदों की वाणी-सन्तों की ज़ुबानी"** (साधु-सन्त और विद्वान् अपने प्रवचनों में 'वेदों की वाणी' का वर्णन उदाहरण देकर कैसे करते हैं।)

उपर्युक्त के अतिरिक्त निकट भविष्य में शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली पुस्तकें हैं:

17. **"पाखण्ड खण्डिनी पताका"** (रामायण, महाभारत, पुराणादि ऐतिहासिक पुस्तकों में अवैज्ञानिक, अप्राकृतिक तथा अवैदिक मिश्रित घटनाओं का वैदिक सिद्धान्तानुसार 'खण्डन और मण्डन')
18. **"वैदिक समाधान"** (वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर विशेष धार्मिक, आध्यात्मिक, मानसिक एवं सामाजिक प्रश्नों, संशयों एवं शंकाओं का समाधान)
19. **"आस्था"** (ईश-भक्ति अर्थात् 'स्तुति, प्रार्थना और उपासना' का वैदिक स्वरूप)।
20. **"Guru"** (In search of spiritual teacher)
21. **"Spirituality"** (From soul to supreme soul)
22. **"मूर्तिपूजा"** (मूर्तिपूजा कब, कहाँ, कैसे और क्यों?)
23. **"माँ"** (माता एक और रूप अनेक)
24. **"आनन्द"** (मनुष्य योनि का परम लक्ष्य)
25. **"मेरी विदेश यात्रा"** (विदेश यात्रा का आँखों देखा हाल)
26. **"मेरे लेख संग्रह"** (श्री मदन रहेजा के प्रकाशित लेखों का अद्‌भुत संग्रह)
27. **"स्वर्ग या आनन्द"** (मनुष्य योनि का परम लक्ष्य 'स्वर्ग या आनन्द' और क्यों?
28. **"सत्यार्थ दर्शन"**
29. **"नारी"** (नारी एक रूप अनेक)
30. **"विचार मन्थन"**

शुभकामनाओं सहित

डॉ० ज्वलन्त कुमार शास्त्री

—अध्यक्ष: स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, रणवीर रणञ्जय महाविद्यालय, अमेठी (उ० प्र०)

भूमिका

ईश्वर साक्षी है

ओ३म्। शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा। शन्नऽइन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः।

नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि।

त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

परमात्मा साक्षी है कि हम किसी भी तथाकथित धर्म, मत, मजहब, पन्थ, जाति अथवा सम्प्रदाय इत्यादि की निन्दा की दृष्टि से खण्डन, अवहेलना, अपमान या मज़ाक करना नहीं चाहते। हमारे दिल में दुनिया के सभी मनुष्य, जीव तथा प्राणियों के लिये प्रेम, दया, करुणा और स्नेह है। हम किसी के मन, हृदय, आस्था या विचारों को ठेस पहुँचाना नहीं चाहते और न ही कभी ऐसा सोच सकते हैं। हम सब को स्वस्थ, सुखी, खुशहाल, धार्मिक, और सत्य के दर्शन कराने का प्रयास कर रहे हैं ताकि हमारे समाज में जितने भी तथाकथित, अधर्मी, नक़ली, बहुरूपिये, वित्तैषणा–रोगी साधु, संत, गुरु और धर्म के नाम पर अन्धविश्वास, अन्धश्रद्धा और पाखण्ड जैसे भयानक रोग फैला रहे हैं, उनको जनता की खुली अदालत के समक्ष लाना है ताकि उन पाखण्डियों के चेहरे से असत्य का नक़ाब (पर्दा) हटा सकें। कौन नहीं चाहता कि 'हम पाखण्डों और अन्धविश्वासों से मुक्त हों और

सत्यासत्य की जानकारी प्राप्त कर मन, वचन, कर्म और स्वभाव से धार्मिक बनें। हमारे अपने देश में ही नहीं, सारे विश्व में अधार्मिक पौराणिक मान्यताओं की वजह से हो रहे हमारे हिन्दू समाज के देवी-देवताओं को लेकर जो मज़ाक उड़ाया जाता है, उसे रोकें। हमारा कर्तव्य ही नहीं, धर्म भी है कि हम अपने भाई-बहनों को, समाज में आग की भाँति फैल रहे अनेक प्रकार के पाखण्डों तथा अन्धविश्वास के रोगों से मुक्त कराएँ और गुमराह लोगों को सच्चे परमात्मा के दर्शन कराएँ।

हम धार्मिक विद्वानों, साधु, सन्तों, महात्माओं का हृदय की गहराइयों से आदर-सम्मान करते हैं। धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार करना अधर्म है। ईश्वर के नाम पर दुकानदारी करना, नाम दान के बदले दाम वसूली करना तथा ईश्वर के स्थान पर किसी और की पूजा करवाना कहाँ का धर्म है?

वैदिक संस्कृति और परम्परा में प्रत्येक नये कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व 'गणपति' (परम पिता परमात्मा) की उपासना का विधान है। यह उचित भी है क्योंकि ईश्वर की कृपा से ही हमारे सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं। हिन्दू समाज में भी सब देवी-देवताओं की पूजा से पहले गणपति की ही पूजा का विधान है क्योंकि 'गणपति' (परमेश्वर) सर्वोपरि हैं।

साधारण लोग काल्पनिक देवी-देवताओं की मूर्तियों को देखकर ऐसा समझते हैं कि जैसे उनको मूर्ति के रूप में ईश्वर के दर्शन हो गए – परन्तु वास्तविकता तो यही है कि उनकी ऐसी धारणा मात्र एक अन्धविश्वास है। कोई भी मूर्ति, प्रतिमा, तस्वीर, या शिल्पकारी जड़ वस्तु होती है और उसके आगे उसकी सेवा, पूजा, अर्चना, आराधना या प्रार्थना करने से कुछ प्राप्त नहीं होता। यह मात्र अन्धविश्वास एवं अन्धश्रद्धा को बढ़ावा देना है। ईश्वर के स्थान पर किसी अन्य की पूजा करना पाप ही नहीं, महापाप है।

[मूर्ति एक प्रतीक है: हम किसी मूर्ति, तस्वीर], शिल्प या प्रतिमा के विरोधी नहीं हैं क्योंकि मूर्तियाँ हमारी धरोहर होती हैं। हम उन मूर्तिकारों, शिल्पकारों एवं कलाकारों का बहुत सम्मान करते हैं जो अपनी कल्पना को कलाकृति द्वारा उभारने का प्रयास करते हैं तथा विविध प्रकार की मूर्तियों का निर्माण करते है। मूर्तियाँ प्रतीक मात्र होती हैं जिन के प्रदर्शन द्वारा अनकही गूढ़ बातों को आसानी से समझाया जाता है। यह लोगों के ज्ञानवर्धन का एक अनोखा उपाय है। हमारी सन्तानें सुसंस्कारी बनें इसलिये घर में मूर्तियाँ कला की दृष्टि से रखनी चाहिये परन्तु जिन मूर्तियों के कारण अपने ही घर या समाज में, किसी भी प्रकार का अन्धविश्वास, अन्धश्रद्धा या भ्रान्तियाँ उत्पन्न होती हों, ऐसी मूर्तियों, तस्वीरों तथा सजावटी वस्तुओं को वहाँ से तुरन्त हटा देना चाहिये। इसी से सब के घर-परिवारों में सुख, समृद्धि, प्रेम एवं शान्ति बनी रहेगी। इस से हमारी सभ्यता एवं संस्कृति अवश्य सुरक्षित रहेगी।

यदि अश्लील या आपत्तिजनक मूर्तियों के प्रदर्शन से किसी जाति, मत-मतान्तर, देश या उसकी सभ्यता और संस्कृति का निरादर होता है – तो उसका समर्थन कोई भी बुद्धिजीवी नहीं कर सकता अतः उसका विरोध होना ही चाहिये।]

चेतन में जड़ और जड़ में चेतन का अनुभव करना अज्ञान या मिथ्याज्ञान कहाता है। अज्ञान ही सब प्रकार के दुःखों का मूल कारण होता है। हम मूर्तियों के विरोधी कदापि नहीं हैं और यह भी सत्य है कि जिस वस्तु को हम बार-बार देखते हैं तो जाने-अनजाने में उस के साथ हमारी भावनाएँ भी जुड़ जाती हैं। कुछ स्वार्थी लोगों ने साधारण लोगों की भावनाओं के साथ खिलवाड़ किया है, जैसे मूर्ति ही भगवान्

है, मूर्ति पूजा से परमात्मा प्रसन्न होते हैं, मूर्तियाँ जीवित मनुष्यों की तरह खाती-पीती हैं, मूर्तियों को नहलाया जाता है, उनको भोग लगाया जाता है इत्यादि—इसको देखकर और सुनकर दूसरे सम्प्रदाय के लोग मूर्तिपूजकों का मज़ाक उड़ाते हैं और उनकी भावनाओं को ठेस पहुँचाने के इरादे से मूर्तियों का निरादर और अपमान करते रहते हैं जिसके कारण समाज में, अपने ही लोगों के बीच में समाज में लड़ाई, झगड़े, फ़साद, अनबन और अशान्ति बनी रहती है।

सत्य सनातन वैदिक धर्म के अनुयायी, मात्र निराकार परमात्मा की उपासना करते हैं लेकिन का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम मूर्तियों का अपमान या निरादर करते हैं। यदि कोई मूर्तियों का अपमान करता है तो सर्वप्रथम हम उसका मुँह तोड़ जवाब भी देते हैं। मूर्तियाँ भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की अमूल्य धरोहर होती हैं क्योंकि मूर्तियाँ हमें बहुत कुछ सिखाती हैं, शिक्षा प्रदान करती हैं, हमारा मार्गदर्शन करती हैं अतः उनकी निगरानी, रक्षा, एवं सुरक्षा करनी चाहिए। हमारे देश का संविधान भी यही कहता है कि किसी की संस्कृति तथा धरोहर को क्षति पहुँचाना अपराध है।

भारतीय इतिहास में काल्पनिक मूर्तियों में जिस मूर्ति (प्रतिमा) का सर्वाधिक सम्मान किया जाता है वह 'गणपति' है किन्तु उसी 'गणपति' की प्रतिमा का हमारे अपने ही लोगों ने इतना अधिक अपमान किया है कि शायद ही किसी अन्य का हुआ हो।

राशियों के नाम पर गणपति, अलग-अलग रूप और रंगों में गणपति, भिन्न-भिन्न आसनों में गणपति, खेल-कूद करते हुए गणपति और न जाने क्या-क्या करते हैं गणपति? दर्शाया जाता है कि गणपति क्रिकेट खेल रहे हैं, (बैटिंग, बॉलिंग और फ़ील्डिंग कर रहे हैं), फुटबॉल खेल रहे हैं, होली के रंगों में रंग रहे हैं, भाग रहे हैं, कूद रहे हैं, और तो और बच्चों के मनोरंजन के नाम पर 'बाल गणपति' पर अनेक ऐनीमेशन चल-चित्र भी

बने हैं। 'गणपति की प्रतिमा' उपहास एवं हास्य का विषय नहीं है अपितु सर्वाधिक शोधनीय विषय है। और तो और जिसकी पूजा सारा संसार करता है उसी 'गणपति' के भिन्न-भिन्न प्रकार के खिलौने बनाए जाते हैं। क्या आपने कभी किसी अन्य मत-मतान्तर (मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख इत्यादि) के अनुयायिओं को, उनके किसी देवी-देवता या गुरुजनों की प्रतिमाओं की इतनी हास्यास्पद दुर्दशा होते देखी हैं? कदापि नहीं! और न ही कभी देखेंगे क्योंकि अन्य मतों के लोग अपने देवी-देवताओं का इतना अधिक आदर-सम्मान करते हैं कि किसी की क्या मजाल कि वे ऐसे घिनौने काम करने की जुर्रत कर सकें!

हम जिन ऐतिहासिक पुरुषों (भगवान् शिवजी, श्री रामचन्द्र, श्री कृष्ण महाराज इत्यादि) को अपना भगवान्, देवता एवं कुलदेवता मानते हैं, उन्हीं के साथ इतना खिलवाड़ क्यों? ऐसा प्रतीत होता है कि हम अपने पूर्वजों की संस्कृति एवं सभ्यता को भूल गए हैं या मानव धर्म के बारे में कुछ जानना नहीं चाहते अथवा ऐसा सोचते हैं कि इन बातों से हमें क्या लेना-देना? मनु महाराज के इन वाक्यों को याद करने की आवश्यकता है-"धर्म के बिना मनुष्य और पशु में कोई अन्तर नहीं रह जाता", मात्र धर्म ही है जो मनुष्य को अन्य पशुओं से अलग करता है।

त्यौहारों के नाम पर गणपति को किसी न किसी रूप में दिखाया जाता है। आज-कल एक और नया पाखण्ड चल पड़ा है कि 'दिवाली के अवसर पर यदि आप अपनी राशि के अनुसार 'गणपति' की प्रतिमा को घर में रखते हैं तो आपकी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाएँगी'। धन बटोरने की बीमारी (लालच) में हम क्या-क्या हरकतें करते हैं, यहाँ तक कि अपने ही भगवानों (देवी-देवताओं) का मज़ाक उड़ाते हैं। चल चित्रों के माध्यम से 'स्वर्ग और नर्क' का मज़ाक उड़ाया जाता है। ऐसे अनेक दृश्य एवं काल्पनिक कहानियाँ दर्शाकर हम अपनी ही हिन्दू संस्कृति की खिल्ली उड़ाते हैं, और हम उसमें प्रसन्न होते हैं।

[मूर्ति में भगवान् है किन्तु मूर्ति भगवान् नहीं होती। मूर्तियाँ बनाने वाले ही प्रायः मूर्तियों को तोड़ा करते हैं। विद्वान् लोग मूर्तियाँ तोड़ते नहीं, जोड़ते हैं, उसकी सुरक्षा करते हैं। जो लोग ईर्ष्या, द्वेष तथा अपमान की भावना से किसी व्यक्ति-विशेष अथवा ऐतिहासिक मूर्तियों का निरादर करते या तोड़ते हैं ऐसे लोग अन्तिम श्रेणी के मानसिक रोगी होते हैं। अमानुषता की श्रेणी को भी लाँघ जाते हैं। वित्तैषणा-ग्रस्त, धर्म के भक्षक, पाखण्डी लोग ही मन्दिरों से भगवान् की मूर्तियाँ चोरी करते या करवाते हैं। इसका क्या अर्थ हुआ कि भगवान् चोरी हो गया? भगवान् को बेचा और ख़रीदा जा सकता है? मूर्तियाँ मात्र सौन्दर्य एवं संस्कृति की प्रतीक हैं और संस्कृति पर प्रहार करने वालों को कभी क्षमा नहीं करना चाहिये।

हम मूर्ति-पूजा के विरोधी हैं, मूर्तियों के नहीं, क्योंकि हम वस्तु का मान एवं रक्षा करना जानते हैं। इतिहास गवाह है कि जब-जब सांस्कृतिक मूर्तियों पर प्रहार हुआ है, तब-तब वैदिक धर्मियों ने ही उनका बचाव किया है।

ईश्वर सर्वव्यापक है, आत्मा और प्रकृति में भी उसी का नूर है, सृष्टि के ज़र्रे-ज़र्रे में विद्यमान है, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश में भी है। वह चेतन तथा जड़ में भी रहता है। माना मिट्टी की मूर्ति में भी है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि हमें मूर्तिपूजा करनी चाहिये। कदापि नहीं! हम चेतन हैं तो क्या हम ईश्वर से मिलने मूर्ति के भीतर प्रवेश कर सकते हैं? नहीं! फिर उससे कब, कहाँ और कैसे मिल सकते हैं? वह एकमात्र स्थान वही हो सकता है जहाँ हम भी हों और हमारा परमात्मा भी विद्यमान हो। दोनों आमने-सामने एक ही स्थान में विद्यमान हों। वह एकमात्र स्थान है-हमारा अन्तःकरण (मन); जहाँ आत्मा के साथ-साथ परमात्मा भी विराजमान होते हैं। ईश्वर सर्वव्यापक होने से प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। ज़रा अपनी आँखें बन्द कीजिये, श्रद्धा और प्रेम से उस निराकार परमेश्वर का ध्यान कीजिये-तत्काल उस निराकार प्रभु के दर्शन हो जाएँगे। ईश्वर का कोई रूप, रंग, आकार या प्रकार नहीं होता। 'आनन्द की अनुभूति' ही परमात्मा का साक्षात्कार कहाता है।]

मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य को जानने वाला होता है। हम सत्य को त्याग कर असत्य की ओर भाग रहे हैं। ईश्वर ने मनुष्य को 'सत्य और असत्य को जानने का एक यन्त्र' प्रदान किया है जिसको हम 'बुद्धि' या 'विवेक' कहते हैं। यदि हम ईश्वर के दिये इस अनमोल यन्त्र का प्रयोग नहीं करते तो इससे हम अपनी हानि तो करते ही हैं साथ में दूसरों की भी हानि करते हैं और यही कारण है कि अधिकतर मनुष्य, मनुष्य होते हुए भी पशुओं की भाँति जीते हैं और मर जाते हैं। स्वयं से पूछें कि क्या हम मनुष्य कहाने योग्य हैं? विवेक होते हुए भी क्या हम विवेकशीलता से कार्य करते हैं? ईश्वर प्रदत्त वेद (ज्ञान-विज्ञान) को जानने का प्रयास करते हैं? प्रत्येक बात को विवेक रूपी कसौटी पर परखते हैं? सत्याऽसत्य का निर्णय करते हैं? वेद एवं आर्ष ग्रन्थों का नियमित स्वाध्याय करते हैं? यदि हाँ! तो क्या हम अपने अन्दर की बात सुनते हैं? हम सत्य को जानते हुए भी असत्य को क्यों मानते हैं? आख़िर हम कब तक ग़फ़लत की नींद में सोते रहेंगे? हमारी अज्ञानता की नींद कब खुलेगी? हम सत्य बात को कहने से डरते क्यों हैं? किस से डरते हैं हम? क्या हमको अपने परम पिता परमात्मा पर भरोसा नहीं है? क्या हमें ईश्वर की न्यायव्यवस्था पर संशय है? बाज़ारू बाबाओं के चक्कर में आकर हम जन्म-मरण के चक्कर में कब तक चकराते रहेंगे? असली को छोड़कर कब तक नकली के पीछे भागते रहेंगे? स्वयं को कब तक धोखा देते रहेंगे? सत्य को जानते हुए भी हम कब तक पत्थरों के आगे हाथ जोड़ते रहेंगे? हम कब गणपति के सत्य स्वरूप को समझेंगे? पत्थर को पूजते-पूजते क्या हम भी पत्थर तो नहीं हो गए हैं?

गणों के स्वामी 'गणपति' के सच्चे स्वरूप को समझें। गणपति कोई खिलौना या दिल बहलाने वाली चीज़ नहीं है। हमारे पूजनीय इष्ट देवता हैं। उनका आदर-सम्मान करना सीखें। सही पूजा, अर्चना सीखें। उनके वैदिक, वैज्ञानिक, आध्यात्मिक,

सांस्कृतिक एवं सार्वजनिक सही स्वरूप को जानने का प्रयास करें। फिर किसकी मजाल है कि वह सब के दिलों में सर्वदा बसने वाले, सब के प्यारे, सब के दुलारे, सब से न्यारे 'गणपति बप्पा' का निरादर कर सके।

अपने प्रिय मित्रों तथा जिज्ञासु पाठकवृन्द से करबद्ध विनम्र प्रार्थना है कि किसी के कहे-सुने या देखे एवं बिना परीक्षण के किसी भी बात को न मानें और न मनवाने दें। पहले सत्य को जानें, फिर मानें। वेदानुकूल आचरण करें। इसी में सब की भलाई है। उर्दू में एक कहावत है – "हिम्मते मर्दां मददे खुदा"। ईश्वर बिना कारण के किसी की सहायता नहीं करता! अपनी सहायता स्वयं को ही करनी पड़ती है। यही सोलह आने सत्य कहावत है कि "जो मनुष्य स्वयं की सहायता करने में कोई कसर नहीं छोड़ता, पूर्ण पुरुषार्थ करता है, परमात्मा उसकी सहायता अवश्य करता है, उसको कभी पीछे नहीं छोड़ता। गणपति परमात्मा सबको सद्बुद्धि प्रदान करे।

आपका अपना

–मदन रहेजा

मंगलमूर्ति गणपति

ओ३म् गणानां त्वा गणपतिं हवामहे। प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे।

निधिनां त्वा निधिपतिं हवामहे वसो मम आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।। यजुर्वेद 23/19

अर्थ—हे गणों के स्वामी गणपति! हम आपका आह्वान् करते हैं। हे प्रियों के प्रियपति हम आपका स्वागत करते हैं। हे निधियों के निधिपति हम आपका स्तवन् करते हैं। आप हमारे शरणदाता हैं। सारे संसार को धारण करने वाले आप अजन्मा हैं। मैं आपको भली-भाँति जान सकूँ इसलिये मैं आपका आह्वान् करता हूँ।

गजाननं भूतगणाधिसेवितं, कपित्थ-जम्बूफल-चारूभक्षणम्। उमासुतं शोकविनाशकारकं, नमामि विघ्नेश्वर पापपंकजम्।। (श्लोक)

अर्थ—हाथी के मुखवाले, भूतप्रेतों के समूह से सेवित, कपित्थ, जामुन आदि मधुर फलों के खाने वाले, शोक विनाश करने वाले, उमा के पुत्र विघ्नेश्वर के चरण कमलों को मैं नमस्कार करता हूँ।

मनोहरं रुचिरं देवरूपम्, धनुर्धरं साहस-वीर रूपम्।
दनुजदलन-शुभ्राश्ववाहकं, उमासुतं गणपतिं नमामि।।
(श्लोक)

अर्थ—मनोहर, सुन्दर, देवरूप, धनुर्धारी, साहस और वीरता के रूप, राक्षसों का विनाश करने वाले, सफ़ेद घोड़े की सवारी करने वाले, उमापुत्र गणपति को मैं नमस्कार करता हूँ।

ऊपर के तीन प्रमाणों से यह पता चलता है कि गणपति की उपासना करने वाले तीन मान्यता के लोग हैं। प्रथम वैदिक धर्म के मानने वाले, जिसे ईश्वर की प्रेरणा से ऋषियों ने लिखा तथा आर्यों ने स्वीकार किया है। वैदिक धर्म के लोग निराकार परमात्मा को ही गणपति मानते हैं। यह बात यजुर्वेद के मंत्र से सिद्ध होती है। इसमें कहीं भी उमापुत्र गणपति का वर्णन नहीं मिलता है।

दूसरा सम्प्रदाय शैव है। यह गणपति को उमापुत्र तो मानता है किन्तु शिवपुत्र नहीं मानता है। इस कथा की विस्तृत जानकारी शिव-पुराण में वर्णित है। गणपति का अर्थ सेनापति होता है। गणपति ने अपने वाहन के रूप में एक चूहे को चुन लिया। इस प्रकार वह बालक उमापुत्र गणपति के रूप में विख्यात हुआ। उमा का ही दूसरा नाम पार्वती है।

तीसरा सम्प्रदाय नीलकण्ठाचार्य का है। वे भी शैव सम्प्रदाय की तरह गणपति के उपासक हैं। उन्होंने 'गणपतिस्तवनम्' नामक पुस्तक में गणपति की स्तुति और वीरता की गाथाओं का वर्णन किया है। उनके अनुसार गणपति हाथी के मुख वाले नहीं हैं। वे तो शंकर और उमा के पुत्र हैं और कार्तिकेय के छोटे भाई हैं। उनका देवताओं जैसा मनोहर रूप है। वे धनुर्धारी, वीर और साहसी हैं। वे सफ़ेद घोड़े की सवारी कर राक्षसों का विनाश करने वाले हैं। वे विघ्नविनायक, मंगल करने वाले तथा देवों में सर्वप्रथम पूज्य हैं। वे ज्ञानी, ध्यानी, वेदज्ञ, आत्मबली, आत्मविश्वासी तथा भक्तों की हमेशा रक्षा करने वाले हैं। वे जहाँ रहते हैं, वहाँ विघ्न, बाधा, अमंगल, अन्याय, अत्याचार, कायरता तथा दुष्टता का निवास नहीं होता है। जो उनकी उपासना करता है वह भी उन्हीं के गुणों से युक्त हो जाता है।

पुराण बताते हैं कि शिव और पार्वती का प्रथम पुत्र कार्तिकेय था। कार्तिकेय को दक्षिण भारत के लोग श्रद्धा से पूजते हैं। कार्तिकेय के पश्चात् गणपति का जन्म हुआ। दोनों बच्चों को

ब्रह्मा जी ने स्वयं वेद पढ़ाया। दोनों बालक बुद्धिमान, नीतिमान, शक्तिशाली तथा पराक्रमी हुए।

पुराणों के आधार पर प्राचीन काल में हिमालय पर्वत पर रहने वालों को देवता कहा जाता है। हिमालय के नीचे आर्यावर्त में आर्य रहते थे। देवताओं और आर्यों को राक्षस बहुत सताया करते थे। उनसे निपटने के लिये देवताओं ने एक विशाल सेना की रचना की। बहुत विचार-विमर्श के पश्चात् ब्रह्मा जी ने सेनापति की नियुक्ति के लिये गणपति का नाम लिया। इससे पूर्व सेनापति के रूप में इन्द्र राक्षसों से हार गये थे। कार्तिकेय हमेशा भ्रमण में व्यस्त रहते थे। अन्त में उन्होंने बताया कि 'गणपति ही ऐसे व्यक्ति हैं जिनमें बल-पौरुष तो है ही, साथ ही साथ निर्मल बुद्धि भी है, विवेक, धैर्य और साहस भी है। शस्त्र-बल, शास्त्र-बल, क्षात्र-बल, ब्रह्म-बल के अतिरिक्त उनमें ध्यान की शक्ति, आत्मबल और आत्म विश्वास भी है। ऐसा व्यक्ति ही विघ्नहर्त्ता और मंगलकर्त्ता होता है।' इसलिये गणपति को मंगलमूर्ति कहते हैं।

पुराणों के आधार पर गणपति का विवाह पर्वतराज की पुत्री ऋद्धि से हुआ था। उससे एक कन्या का जन्म हुआ जिसका नाम सन्तोषी देवी रखा गया। बाद में यही कन्या सन्तोषी माता के रूप में विख्यात हुई।

महर्षि व्यास की जग प्रसिद्ध रचना 'महाभारत' है जिसको लिखने का पूरा श्रेय गणपति को जाता है। महर्षि व्यास ने गणपति को महाभारत लिखने का कार्य सौंपा। गणपति ने लिखने के लिये महर्षि व्यास से एक शर्त रखी थी कि जिस वक़्त आप श्लोक रचने में देर करेंगे तो मैं लेखन कार्य बन्द कर दूँगा। व्यास जी श्लोक बनाकर बोलते रहते और गणपति उस श्लोक को समझकर लेखनबद्ध करते रहे। इस प्रकार एक लाख श्लोकों वाले 'महाभारत' की रचना हुई।

इस समय भारत में दो प्रकार की संस्कृतियाँ सक्रिय हैं। एक

तो वैदिक संस्कृति को मानती है, जो वेदों तथा ऋषि ग्रन्थों से जुड़ी है। इसके अनुसार ईश्वर निराकार, सर्वव्यापक और अजन्मा है। वह न कभी पैदा होता है, न मरता है और न कभी अवतार लेता है। दूसरी पौराणिक संस्कृति है जो पुराणों की विचारधारा को मानती है। उसके अनुसार तीन देवता होते हैं–ब्रह्मा, विष्णु और महेश। ब्रह्मा संसार के रचयिता हैं, विष्णु पालन-पोषण करते हैं और महेश (शिव) विनाश करते हैं। ब्रह्मा को विष्णु का पुत्र बताया गया है। कार्तिकेय और गणपति को शिवजी का पुत्र माना गया है। भगवान् राम और कृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया है। विष्णु को मानने वाले ही अवतारवाद को मानते हैं।

अवतार लेने का कार्य मात्र विष्णु करते हैं, ब्रह्मा या शिव नहीं। उनके अनुसार संसार का पालन-पोषण तथा रक्षा करने का काम विष्णु करते हैं इसलिये वे ही अवतार लेते हैं। दुष्टों का संहार करके सज्जनों की रक्षा करना एवं परस्पर प्रेम फैलानेवाली मानव संस्कृति का प्रचार करते हैं।

वर्तमान में लोग निराकार ईश्वर की कम और साकार व्यक्ति की पूजा अधिक करते हैं। सन्त, महात्मा, गुरु तथा देवी-देवताओं की पूजा (आदर सम्मान तथा आज्ञा पालन) करने में अधिक विश्वास करते हैं। जो साक्षात् दिखता है उसको अधिक महत्त्व देते हैं। उनका ऐसा मानना है कि ईश्वर निराकार है, दिखता नहीं इसलिये उसका ध्यान करना कठिन है।

आज की नई पीढ़ी विज्ञान पढ़ने वाले विद्यार्थी हर वस्तु को तर्क की कसौटी पर परख कर ही स्वीकार करते हैं और जिस वस्तु के मानने में उन्हें तर्क नहीं मिलता उसे कल्पना मानकर छोड़ देते हैं तथा उनमें श्रद्धा नहीं रहती। वे अपने बड़े-बूढ़ों का आदर रखते हुए चुप होते हैं परन्तु उनके मन के किसी न किसी कोने में अश्रद्धा बनी रहती है। इस कारण आधुनिक बच्चे धर्म के क्षेत्र से धीरे-धीरे विमुख होते जा रहे हैं।

आज पौराणिक संस्कृति को मानने वाले लोगों को हिन्दू कहा जाता है जिनकी संख्या बहुत अधिक है। यद्यपि ये सब प्राचीन काल से आर्य ही हैं। ईश्वर को भी मानते हैं। कर्म में विश्वास करते हैं। पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं। ये ईश्वर को निराकार और साकार दोनों को ही स्वीकार करते हैं। जो लोग निराकार ईश्वर को मानते हैं, वे भी अपने मित्रों तथा रिश्तेदारों के आमंत्रण पर उनके पूजा-पाठ में शामिल होते हैं। यद्यपि उनकी मूर्तिपूजा में श्रद्धा नहीं होती तो भी उनके कार्यक्रमों में जाने से आपत्ति नहीं समझते।

आज वक़्त का तकाज़ा है कि लोगों को भ्रमित करने वाली विचारधारा से बचाया जाए और वास्तविक ईश्वर के बारे में जानकारी देनी चाहिये जो उनकी समझ में आए। उस ईश्वर को विज्ञान से, तर्क से तथा प्रत्यक्ष प्रमाणों से सिद्ध किया जा सके। उसके होने का विश्वास हमारे दिल में समा जाए। हमें अनुभव होना चाहिये कि वह चौबीसों घण्टे हमारे साथ है। हमेशा से हमारे साथ रहता है। हम कहीं भी हों वह हमारा साथ नहीं छोड़ता। हमारे प्रत्येक दुःख-सुख का साथी है। हमारे कर्मों का साक्षी है। वह हमें हर विघ्न-बाधा से बचाता है। कष्ट के समय वह कभी हमारा साथ नहीं छोड़ता बल्कि उस समय हमें सद्बुद्धि देता है, हमें सहन करने की शक्ति देता है और सहारा प्रदान करता है। वह हमेशा हमारे अन्दर प्रेम, दया, करुणा, साहस, स्फूर्ति, वीरता, धैर्य, आत्मबल, आत्मविश्वास आदि गुणों को भरता रहता है। हम भले ही उसे भूल जाएँ, स्मरण न करें लेकिन वह हमें कभी नहीं भूलता। सदा हमारे अंग-संग रहता है। वह हम सब का माता, पिता है, बन्धु और सखा है। उसका हम से और हमारा उससे स्थायी सम्बन्ध है जो कभी समाप्त नहीं हो सकता। हम उसकी अमृत सन्तान हैं। जैसे एक बच्चा कभी भी अपने पिता से मिल सकता है उसी तरह हम भी अपने हृदय में रहने वाले ईश्वर से कभी भी, कहीं भी मिल सकते हैं। ध्यान में

बैठकर ही उससे मिला जा सकता है। ध्यान में वह हमारे सामने होता है। आमने-सामने खूब बातें करनी चाहिए। उसके समक्ष बैठकर हम अपने दुःख-सुख की बातें कर सकते हैं। हम उसे अपना परम हितैषी समझते हैं। यही ईश्वर की उपासना है। ईश्वर की उपासना न करने से मनुष्य दुःखों के सागर में डूब जाता है। उसका आत्मबल आत्मविश्वास खोने लगता है। वह अन्दर से खोखला हो जाता है। ईश्वर की उपासना करने से उसमें जीव जीने के गुण समा जाते हैं। इसलिये सही ईश्वर के स्वरूप को जानकर ही उसकी सही तरह से उपासना करनी चाहिये। यही मनुष्य का कर्त्तव्य है। ईश्वरीय गुणों को धारण करना ही धर्म कहलाता है।

कुछ लोग जड़ मूर्ति को चेतन ईश्वर मानकर पूजा (उपासना) करते हैं। यह ग़लत है। जड़ में चेतन का व्यवहार नहीं होता—यह अज्ञानता है। वे मूर्ति के सामने भिखारी बनकर उसे अपने घर-संसार की अनगिनत परेशानियों से अवगत् करते रहते हैं। मेरी बेटी की शादी करा दो, मेरी बीमारी दूर कर दो, मुझे घर दिला दो, मुझे धन-धान्य से भरपूर कर दो...इस प्रकार हज़ारों प्रकार की कामनाएँ पूरी करने के लिये लोग मूर्ति से माँगते रहते हैं। इससे तो यही प्रतीत होता है कि ऐसे लोग यही चाहते हैं कि उन्हें कुछ न करना पड़े, जो कुछ करे वह मूर्ति में बैठा परमात्मा करे। क्या यह एक पाषाण मूर्ति के लिये सम्भव है?

ईश्वर मूर्ति-स्वरूप नहीं: जरा सोचिये! यदि आप अपने माता-पिता के सामने चौबीसों घण्टे अपनी ज़रूरतों की माँग करते रहें तो क्या पूरी हो जाएँगी? संसारी माता-पिता भी यही कहेंगे हमने तुम्हें पाल-पोषकर, पढ़ा-लिखाकर बड़ा किया है, तुम्हें अपने पैरों पर खड़ा किया है, तुम्हें इतना योग्य बनाया है कि अब तुम अपनी रोज़ी-रोटी कमा खा सकते हो, अपने परिवार की देख भाल कर सकते हो। तुम कब तक बच्चा बनकर हमसे माँगते रहोगे। अब तुम बड़े हो गये हो! बस इसी

प्रकार मूर्ति में बसा ईश्वर भी यही करता है। वह मनुष्य की योग्य प्रार्थनों को स्वीकार करता है और अयोग्य माँगों को अस्वीकार। जो मनुष्य पूर्ण पुरुषार्थ के पश्चात् सच्चे स्वच्छ हृदय से ईश्वर की उपासना करता है वह ईश्वर के आशीर्वाद (कृपा) का पात्र बनता है। ऐसा सच्चा व्यक्ति ही ईश्वर का पुत्र कहलाने योग्य होता है। ऐसा व्यक्ति सब में ईश्वर के दर्शन करता है। उसके कार्यों में ईश्वर बसता है। वेद सुभाषित है **'न तस्य प्रतिमा अस्ति'** अर्थात् 'उस ईश्वर की प्रतिमा नहीं है' इसलिये उसके आकार की मूर्ति नहीं बन सकती है। तस्वीर/मूर्ति के माध्यम से ईश्वर के कुछ ही गुणों को दर्शाया जा सकता है इससे मूर्ति को ही ईश्वर मान लेना बहुत बड़ी भूल है। ईश्वर मूर्तिस्वरूप नहीं आनन्दस्वरूप है। उसकी उपासना से आनन्द की अनुभूति होती है।

उपासना किसकी? यहाँ एक बात अवश्य समझनी चाहिये कि मूर्ति में रहने वाला ईश्वर, मूर्ति से निकलकर कभी हमारे साथ बाहर नहीं आ सकता। वह हर जगह हमारी रक्षा कभी नहीं कर सकता। यह शत-प्रति-शत सत्य है कि सर्वव्यापक होने से परमात्मा मूर्ति में भी विराजमान है। अत: हम उसकी उपासना नहीं कर सकते क्योंकि वह मूर्ति के अन्दर और हम मूर्ति के बाहर हैं। इसीलिये दोनों का मिलन नहीं हो सकता। मिलन वहीं हो सकता है जहाँ दोनों आमने सामने हों। वह स्थान मात्र मनुष्य का हृदय ही हो सकता है। उससे मिलने की एक शर्त है कि मनुष्य का हृदय निर्मल होना चाहिये। निर्मल हृदय में ही उस प्रभु के दर्शन हो सकते हैं अर्थात् उसके आनन्द का अनुभव हो सकता है। उससे मिलने का अन्य कोई स्थान नहीं है। मूर्ति की उपासना या पूजा से कोई लाभ नहीं हो सकता। मूर्ति जड़ है, इससे जड़ता आती है। याद रहे 'ईश्वर चेतन है जड़ नहीं'!

आजकल बहुत से विद्वान् गजानन गणपति की मूर्ति को प्रतीक के रूप में स्वीकार करने लगे हैं। यह भी एक शुभ

संकेत है। वे ईश्वर के गुणों को गणपति में आरोपित करके देखते हैं। उनके अनुसार गणपति का बड़ा मस्तक बुद्धिमत्त का प्रतीक है। छोटी आँखें एकाग्रता, लम्बी सूँड कार्यक्षमता, बड़े कान सुनो सब की, छोटा मुँह उतना ही बोलो जितना उपयोगी हो। मूषक प्रतीक है नियन्त्रण का और बड़ा पेट समृद्धि एवं सब को समाने का प्रतीक है। इसी प्रकार और भी अनेक गुणों को गणपति में आरोपित करके देखा जा सकता है। अब प्रश्न है कि क्या हम गणपति की मूर्ति को ईश्वर मानते हैं या देवता? लगता है हम उसे मनुष्य की भाँति समझते हैं। जैसे एक मनुष्य प्रतिदिन सोता-जागता है, नहाता-धोता, खाता-पीता, घूमता-फिरता है उसी तरह हम उनके साथ व्यवहार करते रहते हैं। यदि हम उन्हें देवता भी मानें तो भी अच्छा है। उन्हें भौतिक पदार्थों की आवश्यकता नहीं होती। वे खाते-पीते या साते-जागते नहीं हैं।

मंगलमूर्ति से प्रेरणा: वस्तुतः मूर्तियों को अपने घर या मन्दिर में रखने का उद्देश्य मात्र यही है कि हम उनसे प्रेरणा लेवें। हम अपने माता, पिता, गुरु, दादा, दादी आदि पूर्वजों की तस्वीरें अपने घर में इसलिये रखते हैं क्योंकि हम उनके बताए मार्ग पर चलना चाहते हैं। हमें अपने पूर्वजों पर गर्व है। वे हमारे प्रेरणा-स्रोत हैं। अपने महापुरुषों तथा देशभक्तों की तस्वीरें भी हम इसी उद्देश्य से रखते हैं। देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी हमें इसी तरह की प्रेरणा देती हैं।

गणपति को देखकर हमें उनके शौर्य और वीरता की याद आ जाती है। जब वे संग्राम में राक्षसों को मार-मारकर भगाते थे। उनमें इतना आत्मबल तथा आत्मविश्वास था कि उनके समक्ष संसार की कोई भी बाधा टिक नहीं सकती थी। वे जहाँ जाते थे वहाँ विघ्नविनायक और मंगलमूर्ति बन कर जाते थे। दूसरों को उत्साहित करना, काम में सहायता करना, अपने विवेक का प्रयोग करना, समझदारी से काम लेना आदि गुण उन्हें देखते ही मन में समाने लगते हैं। उनके गुणों को धारण करना ही उनकी

सबसे बड़ी पूजा है। यदि हमने केवल उनकी पूजा की और उनके गुणों को धारण नहीं किया तो उस पूजा का कोई अर्थ या फल प्राप्त नहीं होता। इसलिये देवी-देवताओं की मूर्तियाँ या तस्वीरें अपने घरों में रखी जा सकती हैं। उनसे प्रेरणा ली जा सकती है। उनके दर्शन से हमारे मन में बुरे विचार नहीं उठ सकते अपितु शुभ विचार ही उठेंगे। मन में आत्मविश्वास बढ़ेगा और हम कभी ग़लत रास्ते पर नहीं भटकेंगे। इस प्रकार मूर्तियाँ हमारे जीवन को उन्नति की ओर अग्रसर करती रहती हैं।

मूर्ति और मंगलमूर्ति रहस्यः मूर्ति या तस्वीर एक कला है और कला की कोई भाषा या सीमा नहीं होती। मूर्तिकला का अलग ही महत्व होता है। जो बात शब्दों में बता नहीं सकते उसे मूर्ति कला के माध्यम से दर्शाया जाता है। सौ पुस्तकें मिलकर भी जिस बात का वर्णन नहीं कर सकतीं उसे एक मूर्ति आसानी से कर देती है। जब आप किसी देश का रेखाचित्र (नक़्शा) देखते हैं तो उसमें कोई चित्र नहीं होता, केवल कुछ रेखाएँ होती हैं। उन रेखाओं को देखकर आप वह सब कुछ बता सकते हैं जो आपने पुस्तकों में उस देश के बारे में पढ़ा है। सोचिये! यदि आप उस देश के किसी स्थान या बाज़ार का चित्र देख लें तो आपको उस देश के बारे जानने के लिये किसी पुस्तक की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। मूर्ति सब कुछ बयान कर देती है। चित्र को देखकर चरित्र का पता चलता है। मंगलमूर्ति (गणपति की मूर्ति) को देखकर मंगलमूर्ति के चरित्र (गुण-कर्म-स्वभाव) की जानकारी मिलती है। मूर्ति पूजा करने के लिये नहीं होती, प्रेरणा के लिये होती है। यही रहस्य मूर्तियों और तस्वीरों का समझना चाहिये।

हम मूर्ति के विरोधी कदापि नहीं हैं। लोग समझते और मानते भी हैं कि मूर्तियाँ निर्जीव होती हैं परन्तु उनमें हमारी अनेक भावनाएँ जुड़ जाती हैं इसलिये हमें सजीव दिखाई देती हैं। उनका मानना है कि जैसे कैमरे से निकाली हुई तस्वीरों को देखकर, हमारे मस्तिष्क में पुरानी घटनाओं की यादें ताज़ा हो जाती हैं और

तस्वीरें हमें जीती-जागती दिखाई देती हैं वैसे ही देवी-देवताओं की तस्वीरों को देखकर, हम उनके बारे में जो कहानियाँ सुनते हैं, उनके साथ हमारा तारतम्य जुड़ जाता है जिससे हमें वे तस्वीरें जीवन्त दिखाई देती हैं। हमें मूर्तियों में भगवान् दिखाई देते हैं। इसलिये हम मूर्तिपूजा में कोई दोष नहीं मानते। यहाँ ऐसे मूर्तिपूजक प्रायः इस बात को भूल जाते हैं कि ईश्वर निराकार है अतः उसकी मूर्ति नहीं बन सकती। मूर्ति या तस्वीर मात्र प्रेरणा दायक होती हैं। उनसे प्रेरणा लेकर अपने जीवन में उतारना उचित है परन्तु मूर्ति को ईश्वर मानकर उसकी पूजा-अर्चना करना एक प्रकार का अन्धविश्वास है। चेतन के स्थान पर जड़ की पूजा या उपासना करना घोर पाप है।

मूर्तिपूजा का अर्थः एक बात कभी नहीं भूलनी चाहिये कि मूर्तियों से प्रेरणा लेना और मूर्तिपूजा करने में बहुत अन्तर होता है। क्या किसी महानुभाव ने कभी अपने स्वर्गवासी माता-पिता की मूर्ति के सामने खाद्य पदार्थ का भोग लगाया है या उनके खाने-पीने के लिये चाय-नाश्ता रखा है? नहीं ना! तो फिर हम अपने पूजनीय देवी-देवताओं की मूर्ति के समाने इस प्रकार का मज़ाक या ढोंग क्यों करते हैं? इसी प्रकार यदि आप देवी-देवताओं की मूर्तियों को रोज़ नहलाते-धुलाते हैं, सुलाते-जगाते हैं, खिलाते-पिलाते हैं तो क्या इसको आप मूर्तिपूजा कहते हैं? इससे मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं होती और न ही इसको मूर्तिपूजा कह सकते हैं। इसे मूर्तिपूजा का नाम देना नादानी, अज्ञानता, ढोंग, छल, दिखावा और मात्र अन्धविश्वास है।

प्रिय सजजनो! पूजा का अर्थ होता है—आज्ञा पालन करना, उपयोग करना, आदर-सत्कार करना, सेवा-शुश्रूषा करना, शिक्षा लेना, गुण ग्रहण करना, तृप्ति करना आदि। क्या उपर्युक्त बातें मूर्तिपूजा से प्राप्त होती हैं, जी नहीं! हमारे माता-पिता, बड़े-बूढ़े आचार्य, गुरु, अतिथि आदि हमारे लिये ईश्वर की बनाई साकार

मूर्तियाँ हैं। उनकी पूजा प्रत्येक व्यक्ति को करनी ही चाहिये। उनका जीते-जी श्राद्ध एवं तर्पण भी करना चाहिये। इन जीवित मूर्तियों से अनेक लाभ मिलते हैं। आप ही बताएँ कि क्या मनुष्य की बनाई जड़ मूर्तियों से अनेक लाभ मिलते हैं। आप ही बताएँ कि क्या मनुष्य की बनाई जड़ मूर्तियों की पूजा से कोई लाभ मिल सकता है। कदाचित् नहीं। लेकिन यदि आप केवल मूर्तियाँ रखते हैं और उनके दर्शन से प्रेरणा लेते हैं तो मूर्ति रखने का लाभ है अन्यथा वह मूर्ति मात्र प्रदर्शन और सजावट के लिये ठीक है। एक ओर मनुष्य की बनाई निर्जीव मूर्तियाँ, जिनको कहीं भी रख दो, उससे उनको कोई फ़र्क नहीं पड़ता और दूसरी ओर ईश्वर की बनाई सजीव मूर्तियाँ; जो जीवन के हर मोड़ पर हमारा मार्गदर्शन करती हैं, सुख-दुःख में साथ देती हैं, सदैव उत्साह बढ़ाती हैं। आप ही निर्णय करें कि किस की पूजा करनी योग्य है? जड़ मूर्ति की या सजीव मूर्ति की?

घर में 'गणपति' लाने की प्रथा वर्षों पहले लोकमान्य तिलक ने प्रारम्भ की थी। जिस प्रथा का परिणाम अच्छा हो वह प्रथा अच्छी और जिस क्रिया का फल अच्छा हो वह क्रिया अच्छी। इन प्रथाओं से यदि लोगों में प्रेम, सौहार्द तथा एकता की भावना जागृत होती है तो इन प्रथाओं को पूरे हर्षोल्लास से मनाना चाहिये। इनमें सब को भाग लेना चाहिये। उन्हें इस बात की परवाह नहीं करनी चाहिये कि वे किस जाति, धर्म, मत्, सम्प्रदाय या विचारधारा से जुड़े हैं। उन्हें सिर्फ़ एक बात का ध्यान रखना चाहिये कि लोगों के दिलों में प्यार बढ़े, मित्रता बढ़े, एकता बढ़े। सब एक दूसरे के सुख-दुःख में शामिल हों। देश की उन्नति और समृद्धि के लिये एकता बहुत बड़ी चीज़ है। इससे बड़े-बड़े संकट आसानी से दूर हो जाते हैं। फूट विनाश का कारण है। आज हमारे देश को एकता की आवश्यकता है। आपसी फूट को दूर करने तथा एकता और प्रेम के लिये देश

और संसार को गणेशोत्सव जैसे त्यौहारों की ज़रूरत है। आज यदि गणपति सब को एकता के सूत्र में बाँध रहे हैं तो यह मंगलमूर्ति का ही कमाल है। जो सब का मंगल करे, कल्याण करे, वही मंगलमूर्ति कहाता है। गणपति ही मंगलमूर्ति है। मंगलमूर्ति ही गणपति है। यही गणपति (गणों के स्वामी परम् पिता परमात्मा) के मंगलमूर्ति होने का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है।

गणपति वन्दना (भजन)

ओ३म् गण गणपतये नमः

प्रथम आरती गाऊँ तुम्हारी, हे गण गणपति भगवान्!
सब के प्यारे, सब से निराले, देवगणों में प्रथम स्थान।
शिव-पार्वती के लाल-दुलारे, यश जिनका जगत् में महान।
ऐसे हैं, गण गणपति भगवान्॥1॥

प्रथम आरती गाऊँ तुम्हारी, हे गण गणपति भगवान्!
सुखकर्त्ता दुःखहर्त्ता, जिसका सकल सृष्टि में धाम।
क्यों न करें हम पूजा उसकी, जो है कण-कण में एक समान।
ऐसे हैं, गण गणपति भगवान्॥2॥

प्रथम आरती गाऊँ तुम्हारी, हे गण गणपति भगवान्!
भक्ति भाव से शीश झुकाये, भक्त आये दर्शन को तुम्हारे।
तव दर्शन से मिल जाय सब को, पापों से मुक्ति भगवान्।
ऐसे हैं, गण गणपति भगवान्॥3॥

प्रथम आरती गाऊँ तुम्हारी, हे गण गणपति भगवान्!
कैसे चढ़ाऊँ फल फूल मोदक, तुम्हीं से चलता है सब जहान।
तुम हो सबके पालनहारे, भर दो मेरी झोली भगवान्॥
ऐसे हैं, गण गणपति भगवान्॥4॥

प्रथम आरती गाऊँ तुम्हारी, हे गण गणपति भगवान्!
श्रद्धा के मैं फूल चढ़ाऊँ, सद्‌कर्मों की माला।
करलो तुम स्वीकार प्रभू जी, यही है मेरे पास भगवान्।

रचनाकारः श्रीमती मीनाक्षी वर्मा-पुणे

अथ गणपति पूजा

ओ३म् गणानां त्वा गणपतिं हवामहे। कविं कवीनामुपम-श्रस्वतमम्। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः श्रृण्वन्नुनिभिः सीद सादम्।। – ऋग्वेद 2/23/1

ओ३म् गणानां त्वा गणपतिं हवामहे। प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे। निधिनां त्वा निधिपतिं हवामहे। वसो मम आहमजानि गर्भंद्यमा त्वमजासि गर्भद्यम्।। यजुर्वेद 23/19

संसार में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, छोटा हो या बड़ा, किसी न किसी रूप में, किसी न किसी पद्धति से, अपने-अपने ढंग से, एक निराकार एवं अदृश्य शक्ति (तत्त्व) को मानता है तथा उसकी पूजा करता है और वह उसे किसी एक नाम से सम्बोधित करता है। वह नाम कोई भी हो सकता है। जिस व्यक्ति की जो मातृभाषा होती है वह उसी भाषा में उस नाम के सहारे याद करता है, उसके गीत गाता है। हमारे भूगोल में अनेक राष्ट्र हैं, उनमें अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं, हर देश की सभ्यता एवं संस्कृति भी अलग-अलग होती है, उनके अपने-अपने विचार, मत, मज़हब, रिलीजन, पंथादि होते हैं अतः जिस नाम की हम चर्चा कर रहे हैं उस परम तत्त्व, जिसको हम 'ईश्वर' कहते हैं। ईश्वर के अतिरिक्त और भी अनेक नाम हैं। कुछ नाम इस प्रकार हैं - वैदिक धर्म में उसे ईश्वर या परमात्मा, हिन्दुओं में भगवान्, इस्लाम मज़हब में अल्लाह या खुदा, सिख पंथ में वाहे गुरु, क्रिश्चियन रिलीजन में गॉड आदि नामों से जाना जाता है। क्योंकि वह परमात्मा एक अदृश्य (निराकार) तत्त्व है

जिसके अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव हैं अतः उसके गौणिक, कार्मिक, स्वाभाविक, आलंकारिक इत्यादि नाम भी असंख्य होते हैं जैसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, प्रभु, शिव, शंकर, शम्भू, 'गणपति', गणेश, गजानन, परमात्मा, अल्लाह, खुदा, खोदा, खुदाया, परवरदिगार, सरकार-ए-आलम, सच्चे पात्शाह, मालिक, रब, रब्बा आदि। ईश्वर के अनेकानेक नाम प्रचलित हैं। लोगों में उसके प्रति दृढ़ आस्था भी है परन्तु आश्चर्य की बात है कि आज तक किसी ने भी अपनी आँखों से उसे साक्षात् नहीं देखा है।

आगे बढ़ने से पूर्व इतना अवश्य बताना चाहेंगे कि इस संसार में कोई किसी की बातों पर पूर्णरूपेण शत-प्रतिशत भरोसा या विश्वास नहीं करता और करना भी नहीं चाहिये क्योंकि मनुष्य सर्वाधिक स्वार्थी प्रकार का प्राणी है जो मात्र स्वयं को ही सही मानता है तथा सर्वप्रथम अपने ही हित के बारे में सोचता है। आख़िर किस पर यक़ीन करें? जब तक इस प्रश्न का सही उत्तर नहीं ढूँढ़ लेते तब तक हम 'गणपति' के सत्य स्वरूप के दर्शन नहीं कर पाएँगे।

सर्वविदित है कि संसार में अनेक प्रकार के लोग रहते हैं, अलग-अलग मत-मतान्तर तथा मज़हब के लोग, अपने-अपने रीति-रिवाज़ एवं तथाकथित धर्म को ही सही एवं सत्य मानते हैं। वास्तव में होना तो यह चाहिये कि 'पहले सत्य जानें फिर मानें'। उनकी अनेक बातें सही भी हो सकती हैं परन्तु सत्य को कोई नकार नहीं सकता क्योंकि सत्य सदैव सत्य होता है'। परिस्थितियाँ प्रत्येक पल बदलती रहती हैं क्योंकि परिवर्तन ही संसार का अटल नियम है। सत्य सर्वदा सत्य ही रहता है इसलिये सर्वोपरि होता है। **"सत्यमेवजयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः" (मुण्डकोपनिषद मु. 3, ख. 1, मं. 6)** अर्थात् 'सर्वदा सत्य की विजय और असत्य की पराजय होती है। सत्य ही से विद्वानों का मार्ग प्रशस्त होता है।' **"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" (तैत्तिरीयोपनिषद् 2/1)** जिसका अर्थ निकलता है कि 'ज्ञान हीं सत्य है और ईश्वर अनन्त है।'

सब अपने अपने धर्म-ग्रन्थों में ही विश्वास करते हैं। एक मत-मज़हब वाला व्यक्ति दूसरे मत-मतान्तर के धर्म-ग्रन्थ को नहीं मानता। इसका निर्णय कौन करेगा? स्मरण रहे कि सब मनुष्यों का "धर्म" मात्र एक होता है – वह है "मानवता"। अत: जिस पुस्तक में मनुष्य मात्र के कल्याण तथा उत्थान की बातें लिखी हों, जिसमें ज्ञान-विज्ञान (सत्य) की बातें लिखी हों, सर्वप्रथम उसका स्वाध्याय करें, सच्चाई जानने का प्रयास करें और जब पूर्ण विश्वास हो जाए फिर उसको जीवन में धारण करें। अन्त में उन्हीं बातों पर विश्वास करें जो सत्य हों। पुस्तकें मनुष्य की लिखी होती हैं और जैसे कि मनुष्य स्वभाव से अल्पज्ञ होता है अत: उसके कार्य में जाने-अनजाने त्रुटियाँ रह ही जाती हैं।

नोट: ईश्वर प्रदत्त ज्ञान को 'वेद' कहते हैं। 'वेद' का शाब्दिक अर्थ होता है 'ज्ञान'। वेद में प्रत्येक बात ज्ञान पर ही आधारित होती है। वैज्ञानिक लोग जिस प्राकृतिक रहस्य को अपनी प्रयोगशाला (लैबोरेट्री) में बार-बार परीक्षण करके सही जानकर स्वीकारते हैं, अपनाते हैं, हम उसे लौकिक भाषा में 'विज्ञान' (विशेष ज्ञान) कहते हैं। सृष्टि को बने लगभग दो अरब वर्ष होने को आए हैं परन्तु संसार में अभी भी ऐसे अनेक रहस्य विद्यमान हैं जिनकी सटीक जानकारी वैज्ञानिकों को आज भी नहीं हो पाई है। वेद ही एक मात्र ऐसा ईश्वरीय ग्रन्थ है जिसमें मनुष्य के कल्याण एवं अपवर्ग (उत्थान) हेतु सम्पूर्ण ज्ञान विद्यमान है।

वेद की बातों को आचरण में लाने का नाम 'धर्म' कहाता है। स्मरण रखना चाहिये कि मनुष्य का मात्र एक धर्म होता है जिसको 'मानव धर्म' कहते हैं। मनुष्य को क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये, जीवन में कौन से उपाय हैं जिनसे वह स्वयं सुखी रह सकता है तथा औरों को भी सुखी कर सकता है। ऐसी अनेक बातें हैं जो जानने योग्य हैं एवं जिस के धारण करने से वह सुख-शान्ति से जीवन व्यतीत कर सकता है और अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। इसकी जानकारी हमें 'धर्म'

द्वारा प्राप्त होती है। शास्त्रों में कहा है–'जो व्यक्ति धर्म की रक्षा करता है धर्म उसकी रक्षा करता है' अर्थात् जो मनुष्य धर्म के बताए मार्ग पर चलता है वह जीवन में सदा सुखी रहता है। परमात्मा सृष्टि के आदि में ऋषियों द्वारा सब मनुष्यों को वेदों का पवित्र ज्ञान प्रदान करता है। 'वेद' ईश्वरीय हैं तथा ज्ञान के भण्डार हैं अत: 'वैदिक धर्म' को ही 'मानव धर्म' कहते हैं। ऋषियों की पुस्तकों को 'आर्ष ग्रन्थ' कहते हैं, उनका स्वाध्याय करना चाहिये। यदि कोई शंका हो तो उसका समाधान या अन्तिम प्रमाण 'वेद' हैं। धर्म की विस्तृत व्याख्या हम आगे भी करते रहेंगे।

ओ३म् : वेद तथा सभी आर्ष ग्रन्थों में परम पिता परमात्मा का निज नाम "ओ३म्" बताया गया है क्योंकि इस 'ओ३म्' नाम में ईश्वर के सभी नामों का समावेश होता है।

'ईश्वर' और 'भगवान्' में अन्तर:–'भगवान्' एक प्रकार की उपाधि है जैसे ब्राह्मण, मुनि, ऋषि, महर्षि, ब्रह्मर्षि इत्यादि। भगवान् की उपाधि किसे दी जाती है – इसको समझाने के लिये 'विष्णु पुराण' का यह सुप्रसिद्ध श्लोक है जिसमें 'भगवान्' शब्द की परिभाषा बताई गई है कि भगवान् किसे कहते हैं:

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशस्य श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतिंरणा॥ (वि॰ पु॰ 6/5/74)

अर्थात् 1. सम्पूर्ण ऐश्वर्य (वैभव), 2. वीर्य (बल), 3. यश (कीर्ति), 4. श्री (धन-सम्पदा), 5. ज्ञान (विद्यायुक्त), और 6. वैराग्य (त्यागभाव), इन छः गुणों के समूह का नाम 'भग' है। जिन महापुरुषों में उपर्युक्त छः गुण विद्यमान होते हैं उनको 'भगवान्' कहते हैं अर्थात् ऐसे महात्मा पुरुष 'भगवान्' कहाने योग्य होते हैं। जैसे बल वाले व्यक्ति को 'बलवान' कहते हैं, धन सम्पन्न व्यक्ति को 'धनवान' कहते हैं, विद्या युक्त व्यक्ति को 'विद्यावान या विद्वान्' कहते हैं उसी प्रकार 'भग' वाले व्यक्ति को 'भगवान्' कहते हैं। 'भगवान' एक शरीरधारी मनुष्य ही होता है। मनुष्य, चाहे वह कोई राजा, महाराजा, योगी, महायोगी, संन्यासी, विद्वान्, महापुरुष या राजनेता ही क्यों न हो,

अपने उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव एवं सुसंस्कारों के आधार पर 'भगवान्' तो बन सकता है परन्तु 'ईश्वर' कदापि नहीं बन सकता। ईश्वर एक अद्वितीय सर्वव्यापक सत्ता है।

ईश्वर शब्द में चार अक्षर होते हैं: ई + श् + व + र, इन चार अक्षरों का क्रमशः अर्थ इस प्रकार है – ई से इन्द्रिय + श् से शंशय (संशय) + व से विकार + र से रहित अर्थात् जो इन्द्रियों (5 ज्ञानेन्द्रियाँ तथा 5 कर्मेन्द्रियाँ) तथा सब संशयों इत्यादि विकारों से रहित है उसे 'ईश्वर' कहते हैं। दूसरे शब्दों में स्पष्ट है कि ईश्वर निराकार एवं विकारों रहित होता है।

'भगवान्:' में पाँच अक्षर होते हैं: भ + ग + व + अ + न् तथा उसका अर्थ है– भ से भूमि (पृथ्वी), ग से गगन (आकाश), व से वायु, अ से अग्नि और न् से पानी (जल) अर्थात् जो 'पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश' इन पञ्चमहाभूतों को धारण करता है वह 'भगवान् कहाता है।

निराकार ईश्वर मूल प्रकृति से समस्त सृष्टि को रचकर धारण करता है। मनुष्य का शरीर पञ्चमहाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) से बना है अर्थात् आत्मा पञ्चमहाभूतों से बने शरीर को धारण करता है और जो मनुष्य संसार में आकर श्रेष्ठ कर्म करता है वह 'भगवान्' बन सकता है। स्मरण रहे कि भगवान् और ईश्वर में बहुत अन्तर है। ईश्वर कभी जन्म नहीं लेता क्योंकि वह सब विकारों से रहित है और भगवान् कभी ईश्वर नहीं बन सकता। और अब देखते हैं कि ईश्वर किसे कहते हैं:

'ईशावास्यमिदं सर्वम्' (यजुर्वेद: 40/1) अर्थात् ईश्वर इस ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु के कण-कण में विद्यमान है-वह सब वस्तुओं के भीतर-बाहर ओत-प्रोत रहता है।

'जन्माद्यस्य यत:' (वैशेषिक दर्शन: 1/1/2) इस सूत्र का सारांश है–जिससे इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होती है उस चेतन का नाम ईश्वर है।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः (योग दर्शन: 1/24) अर्थात् जो अविद्या, क्लेश, कुशल-अकुशल, इष्ट-अनिष्ट और मिश्र फलदायक कर्मों की वासना से रहित है,

वह सब जीवों से विशेष 'ईश्वर' कहाता है।

अतः ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है। परमात्मा वेदज्ञान प्रदाता, सब जीवों के कर्मों का निर्णायक एवं फलदाता है। ईश्वर के बारे में जितना अधिक जानने का प्रयास करेंगे उस के प्रति उतना ही प्रेम, श्रद्धा, आस्था बढ़ती है।

पाठकवृन्द स्वयं निर्णय करें कि क्या कोई भगवान् (श्रेष्ठ मनुष्य) कभी ईश्वर बन सकता है? ऐसी कल्पना करना भी अज्ञानता है।

[ईश्वर सर्वोपरि है: प्रायः लोग भक्तिभाव तथा प्रेम से 'ईश्वर' को भी 'भगवान्' कहकर बुलाते हैं, इसमें कोई आपत्तिजनक बात नहीं है और न ही इसमें कोई हानि है। हाँ! किसी व्यक्ति-विशेष, महापुरुष, साधु-सन्त अथवा किसी महात्मा, योगी या राजा के गुण-कर्म-स्वभाव से प्रभावित होकर उसे 'भगवान्' से सम्बोधित कर सकते हैं परन्तु उसको 'ईश्वर' समझने या मानने की भूल करना बहुत बड़ा पाप है। सत्ययुग में सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र, द्वापर में श्री रामचन्द्र तथा त्रेता युग में श्री कृष्ण महाराज सुप्रसिद्ध राज़ा हो चुके हैं, उनके गुण-कर्म-स्वभाव तथा व्यवहारों की प्रशंसा सब करते हैं और करनी भी चाहिये और, उनको 'भगवान्' की उपाधि से सुशोभित करते हैं परन्तु उन पुण्यात्माओं को 'ईश्वर' या उसका अवतार मान लेना बहुत बड़ी अज्ञानता है। ईश्वर सर्वव्यापक होने से उसके अवतरण का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। कभी-कभी सिद्ध-योगियों अथवा महात्माओं में तीव्र इच्छा होती है कि वे मृत्योपरान्त अवतार लें (इस संसार में आएँ) ताकि मानवता की और सेवा कर सकें। इस तथ्य को सभी धर्मनिष्ठ लोग जानते हैं। ऊपर से नीचे उतरने को 'अवतरण' तथा उतरने वाले व्यक्ति को

'अवतार' कहते हैं। ईश्वर सर्वव्यापक है अतः उसका अवतार कदापि नहीं होता।

अंग्रेजी में 'भगवान्' को 'लॉर्ड' (Lord) तथा ईश्वर को 'गॉड' (God) कहते हैं, अंग्रेजी जानने वाले कभी गॉड को लॉर्ड या लॉर्ड को गॉड कहने की ग़लती नहीं करते। इतनी छोटी सी बात को हमारे अपने सनातन धर्म के अनुयायी लोग क्यों नहीं समझने का प्रयास करते हैं?]

सर्वविदित है कि महापुरुषों तथा महात्माओं को सम्मान देने हेतु उनके नाम के आगे 'श्री' शब्द का प्रयोग किया जाता है जैसे श्री राम, श्री कृष्ण, श्री गणेश इत्यादि, परन्तु क्या कभी किसी ने ईश्वर के अनेक नामों में से किसी भी नाम के आगे 'श्री पढ़ा, सुना या लिखा पाया है - जैसे श्री ओ३म्, श्री ईश्वर, श्री प्रभु इत्यादि? कदापि नहीं। परमात्मा स्वयं ऐश्वर्य-सम्पन्न है। नाम के आगे 'श्री' लिखने या बोलने की आवश्यकता मात्र मनुष्यों को ही पड़ती है, ईश्वर के लिये नहीं।

प्रायः लोग हमारे ऋषियों, राजाओं, साधु, सन्तों, धार्मिक लोगों, गुरुओं तथा महापुरुषों के कार्यों को सराहने तथा आदर-सम्मान की दृष्टि से उनके नाम के आगे या पीछे 'भगवान्' की उपाधि लगाकर उन्हें सुशोभित करते हैं- जैसे भगवान् शंकर, गणपति महाराज, भगवान् श्री रामचन्द्र, योगेश्वर श्री कृष्ण, भगवान् बुद्ध, भगवान् महावीर आदि। महान ऋषियों के नाम के आगे 'महर्षि' की उपाधि लगाते हैं जैसे महर्षि पतंजलि, महर्षि कणाद, महर्षि दयानन्द आदि। यह अच्छी बात है कि हमें अपने पूर्वजों का नाम सम्मान से लेना चाहिये। कालान्तर में, स्वाध्याय की कमी के कारण तथा लोगों की अज्ञानता कहिये या कुछ स्वार्थी लोगों का षड्यन्त्र कहिये, उन आदरणीय महापुरुषों को भी ईश्वर के स्थान पर पूजा जाने लगा और उनके नाम पर समाधियों तथा अनेक मन्दिरों का निर्माण किया गया। सामान्य लोगों ने 'भगवान्' को ही 'ईश्वर' मान लिया। लोग सच्चे ईश्वर को भूल कर, मन्दिरों की पाषाण मूर्तियों को ही ईश्वर मानकर, हाथ जोड़ने लगे, आरती उतारने लगे और उसकी पूजा करने लगे।

इतिहास प्रमाण है कि जब से यह संसार बना है उस समय से लेकर आज से लगभग 2600 वर्ष पूर्व तक मूर्तिपूजा (जड़-पूजा) का चलन नहीं था। श्री राम को हुए लगभग 13* लाख वर्ष बीत चुके हैं तथा श्री कृष्ण को 5 हज़ार वर्ष से भी अधिक हो चुके हैं। उस समय तक मूर्तिपूजा का नामो-निशाँ तक नहीं था। मूर्तिपूजा का चलन मात्र जैनियों के आने के बाद से ही प्रारम्भ हुआ है। जैन समुदाय के मन्दिर तब से बनने प्रारम्भ हुए, जब से जैनी लोग अपने तीर्थंकरों (जैन महापुरुषों को तीर्थंकर कहते हैं) की मूर्तियों की पूजा करने लगे। इसी देखा-देखी में तथा इस भय से कि कहीं हिन्दू सम्प्रदाय के लोग, जैनियों के मन्दिरों से प्रभावित न हो जाएँ, हिन्दुओं ने भी अपने देवी-देवताओं के नाम पर अनेक मन्दिरों का निर्माण प्रारम्भ किया। उन मन्दिरों में पुराणों में वर्णित काल्पनिक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित कीं तथा लोगों को भ्रमित किया जाने लगा कि मन्दिरों की मूर्तियों में ही ईश्वर के दर्शन होते हैं। आज 'मूर्तिपूजा' के संस्कार इतने गहरे पड़ चुके हैं कि आज भी अधिकतर लोग परमात्मा के स्थान पर पाषाण मूर्तियों में परमात्मा का वास समझते हैं।

[*गीता प्रेस 'गोरखपुर' ने कई वर्ष पूर्व श्री रामचन्द्र का 13 लाखवाँ जन्म-दिवस मनाया था]

मन्दिरों के प्रति लोगों में बड़ी श्रद्धा (अन्धश्रद्धा) जागृत हो गई है, यहाँ तक कि वे अपने पूजकों के नाम पर समाधि बनाकर उनको मन्दिर का नाम देते हैं। मूर्तिपूजकों की ऐसी मनःस्थिति बन गई है कि मन्दिर के नाम से वहाँ अवश्य दर्शन करने जाते हैं। जहाँ भी किसी मूर्ति को देखते हैं, चाहे वह रास्ते के किनारे या किसी दरख़्त के नीचे रखी हो, कहीं भी क्यों न हो, बिना सोचे-समझे उसको हाथ जोड़ते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण है कि ऐसे लोग चलते-फिरते, बस में सफ़र कर रहे हों, अपनी कार में घूम रहे हों या ट्रेन की यात्रा कर रहे हों, जहाँ कहीं किसी मूर्ति की झलक दिखाई दी कि उसको नमन करते हैं और उनके हाथ जुड़ जाते हैं। क्या ऐसा करने से उनकी सब कामनाएँ, मन्नतें, इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं या उनके मन को

शान्ति पहुँचती है? ऐसे लोग अपने-आपको बहुत बड़ा धार्मिक समझने लगते हैं। धर्मात्माओं के ये लक्षण नहीं होते। धर्म के मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति ही धर्मात्मा होता है।

विशेष : "गणपति पूजा" कब, कहाँ, कैसे और क्यों करनी चाहिये? इस विषय को समझने से पूर्व हमें वैदिक धर्म के सिद्धान्त 'त्रैतवाद' को समझना चाहिये।

त्रैतवाद : वैदिक धर्म त्रैतवाद के सिद्धान्त को मानता है अर्थात् तीन सत्ताएँ अनादि हैं - ईश्वर, जीव (आत्मा) और प्रकृति। ये तीनों वस्तुएँ सदा से हैं और सदा बनी रहेंगी। इन तीनों सत्ताओं का रचयिता कोई नहीं है। तीनों स्वभाव से अनादि हैं इसलिये 'स्वयम्भू' हैं अतः इन तीनों का कोई कारण नहीं है। उनमें से ईश्वर और जीव दोनों चेतन अर्थात् ज्ञानसहित हैं और तीसरी वस्तु प्रकृति जड़ अर्थात् ज्ञानरहित है। ईश्वर सर्वव्यापक होने से सर्वज्ञ है।

नोट : उपर्युक्त तीन वस्तुओं के अलावा अन्य कोई चौथी, पाँचवीं, छठी --- वस्तु नहीं होती। भूत-प्रेत इत्यादि नहीं होते। सांसारिक सब वस्तुएँ जड़ होती हैं जो प्रकृति की विकृति (सृष्टि) के कारण ही अस्तित्व में आती हैं और उनका विनाश होने पर अपने मूल तत्त्व प्रकृति में लौट जाती हैं।

ईश्वर : ईश्वर सर्वगुणसम्पन्न चेतन अनादि सत्ता है। वह सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त तथा सृष्टिकर्त्ता, सृष्टिधर्त्ता है। परमात्मा सबका माता, पिता, बन्धु, सखा, साक्षी, राजा, कर्मफल प्रदाता, विधाता, निर्लेप, निराला, अद्‌भुत, सर्वज्ञ और वेद-ज्ञान-प्रदाता है।

परमात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव की बराबरी कोई (जीवात्मा) नहीं कर सकता है क्योंकि परमात्मा सर्वोपरि है। परमात्मा का ज्ञान सदा एकरस रहता है। ईश्वर अनेक नहीं हैं, एक अद्वितीय है। उसके जैसा कोई नहीं है। 'गणपति' परम पिता परमात्मा का

ही एक गौणिक नाम है। इसकी विस्तृत जानकारी क्रमशः आगे देते रहेंगे।

जीव : ईश्वर की तरह जीव भी नित्य अर्थात् अनादि होता है अर्थात् उसका जन्म या मृत्यु नहीं होती। जीव जिस शरीर में रहता है, मात्र उस शरीर का जन्म तथा मृत्यु होती है। (स्मरण रहे कि जो वस्तु बनती है, जिसका निर्माण होता है, जिसका जन्म होता है, उसका विनाश या मृत्यु अवश्य होती है।)

जीव को ही 'आत्मा' या 'जीवात्मा' कहते हैं। आत्मा अनेक हैं, असंख्य हैं, अनगिनत हैं परन्तु एकसी होती हैं। प्रत्येक आत्मा एक दूसरे से भिन्न होता है। एकदेशी तथा स्वभाव से अल्पज्ञ होता है। प्रत्येक प्राणी में मात्र एक ही जीव का वास होता है एवं अपने-अपने पिछले कर्मों के फलस्वरूप भोग भोगते हैं। सर्वज्ञ होने से केवल परमात्मा ही जीवों के योनियों का चयन करता है।

प्रकृति : सृष्टि की सामग्री (जिस वस्तु से सृष्टि का निर्माण होता है) को 'प्रकृति' कहते हैं। प्रकृति में तीन गुण होते हैं—सत्त्व, रज और तम। जब ये तीनों गुण साम्यावस्था अर्थात् एकसी अवस्था में होते हैं, उसको 'प्रकृति' का नाम दिया जाता है। प्रकृति अत्यन्त सूक्ष्म होने से भौतिक आँखों से नहीं दिखती है परन्तु समाध्यावस्था में योगीजन उसका दर्शन (अनुभव) करते हैं। चेतन वस्तु स्वभाव से निराकार (रूप, रंग, आकार रहित) होती है तथा स्थान नहीं घेरती और दूसरी ओर जड़ वस्तु स्थान घेरती है अतः उसका रूप, रंग और आकार होता है। अत्यन्त सूक्ष्म स्थिति में जड़ वस्तु भी दिखाई नहीं देती है जैसे वायु, सूक्ष्म जीव-जन्तु, बैक्टीरिया, वायरस, कीटाणु, वायु इत्यादि।

वेदों में गणपति महिमा

वेदों में 'गणपति शब्द अनेकों बार आया है जिसका अर्थ है "गणों का स्वामी" अर्थात् इस ब्रह्माण्ड में जितनी भी वस्तुएँ विद्यमान हैं, जिनकी गणना हो सकती है, उन सब के स्वामी को "गणपति" (सब गणों का पति) अर्थात् परम पति परमात्मा कहते हैं। सब मनुष्यों को 'गणपति' की पूजा करनी चाहिये। मनुष्य मात्र का यह कर्त्तव्य ही नहीं, धर्म भी है कि वह 'गणपति' अर्थात् गणों के स्वामी परमेश्वर की पूजा अर्थात् उस की आज्ञा का पालन करना चाहिये। परमात्मा की वाणी ही उसकी आज्ञा होती है। जो-जो बातें वेदों में कही गई हैं, उन-उन बातों का स्वाध्याय मनुष्य मात्र को करना चाहिये तथा उनको अपने जीवन में धारण करना चाहिये अर्थात् उनको व्यवहार में लाना चाहिये-यही ईश्वर की सच्ची पूजा कहाती है। सरल भाषा में धर्म का पालन करना ही गणपति (ईश्वर) की पूजा है। धर्म का आचरण सब के लिये समान होता है और उसका पैमाना परमात्मा के गुणों को धारण करने से होता है।

अध्यात्म का अर्थ आत्मा को जानना फिर परमात्मा के गुणों को धारण करके उसी में रमे रहना है - इसमें प्रदर्शन नहीं होता।

हिन्दू समाज में प्रायः लोगों की ऐसी मान्यता है कि कोई भी शुभ कार्य करने से पूर्व यदि हम ने 'गणपति' (प्रचलित हाथी मस्तिष्क वाले गणपति) की पूजा नहीं की तो वह कार्य सफल नहीं होगा या हम उस कार्य के करने में असफल होंगे। उनकी यह धारणा ग़लत नहीं है और न ही कोई अन्धविश्वास है।

वास्तव में उनकी यह आस्था शत-प्रतिशत सत्य पर आधारित है क्योंकि प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ करने से पहले समझदार व्यक्ति को गणपति अर्थात् परम पिता परमात्मा की पूजा अवश्य करनी चाहिये क्योंकि कोई भी कार्य उस ईश्वर की कृपा के बिना सिद्ध नहीं होता। यहाँ हमें एक बात का ध्यान रखना चाहिये कि परमात्मा की पूजा अर्थात् मात्र परमात्मा की ही पूजा होनी चाहिये। ईश्वर के स्थान पर किसी अन्य की पूजा (उपासना) करना या किसी काल्पनिक तस्वीर या पाषाण मूर्ति को सामने रखकर उसकी उपासना करना, ईश्वर की पूजा नहीं अपितु उस परम पिता परमात्मा का घोर अपमान करना है। मूर्ति पूजा करने से हम परमात्मा की पूजा से वञ्चित रहते हैं। मूर्तिपूजा करने से अनेक प्रकार के अन्धविश्वास उत्पन्न होने लगते हैं और लोग सच्चे परमात्मा को भूल जाते हैं तथा नास्तिकता की ओर अग्रसर होते हैं-यह सत्य सनातन वैदिक पूजा पद्धति के बिलकुल विरुद्ध है।

वस्तुतः ब्रह्मा (सब से बड़ा), विष्णु (सर्वव्यापक), महेश (महान ऐश्वर्ययुक्त), गणपति (गणों का स्वामी), गणेश (गणों का ईश्वर), शिव (कल्याणकारी), शंकर (कल्याण करने वाला), शम्भु (हितकारी), स्वयंभू (नित्य) इत्यादि उसी एक परमात्मा के ही गौणिक कार्मिक, स्वाभाविक, आलंकारिक नाम हैं। परमात्मा अनेक नहीं, एक है जिसको अलग-अलग स्थानों पर, विश्व की विभिन्न भाषाओं में, अलग-अलग नामों से जाना जाता है। जिसको जो ईश्वर का नाम प्यारा लगता है वह उसी नाम से उसको स्मरण करता है। 'गणपति' भी परमात्मा के असंख्य नामों में से एक प्रसिद्ध नाम है। पुराणों में जिस 'गणपति' नाम की चर्चा है वह भगवान् 'शिव' और माता 'पार्वती' का पुत्र बताया गया है (शिव पुराण एवं ब्रह्म वैवर्त पुराण में वर्णित कहानी की चर्चा आगे करेंगे) उसको लोगों ने अपने इष्टदेव के रूप में अपनाया है।

गणपति के तीन अर्थ : 'गणपति' शब्द तीन अर्थों में प्रचलित है। 1. 'गणपति' अर्थात् गणों का स्वामी - परम पिता परमात्मा, 2. 'गणपति' का दूसरा अर्थ है 'प्रजा का पालन करने वाला' - प्रजापति और क्योंकि यज्ञ के द्वारा समस्त प्रजा का उपकार होता है इसलिये यज्ञाग्नि को भी गणपति कहते हैं, और 3. 'गणपति' का तीसरा अर्थ होता है-समूह या प्रजा का स्वामी अर्थात् राष्ट्रपति। देश के राष्ट्रपति को भी गणपति कहते हैं।

सार्वजनिक गणपति की व्याख्या :

1) **गणपति**=गण+पति=गणपति अर्थात् गणों का स्वामी।

प्रिय पाठकवृन्द! 'परमात्मा' शब्द एक अद्वितीय चेतन सर्वोत्तम वस्तु का बोध कराता है। वह परमेश्वर मनुष्य मात्र का है, किसी राष्ट्र या जाति विशेष का नहीं, अपितु सारे विश्व का स्वामी है। वह अनादि काल से सृष्टि की रचना करता है, उसको व्यवस्था में रखता है और समय आने पर उसका अन्त करता है।

वेद के निम्नलिखित मन्त्रों में स्पष्टरूप से गणपति की महिमा का वर्णन है:

ओ३म् गणानां त्वा गणपतिं हवामहे। कविं कवी-नामुपम श्रस्वतमम्। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः श्रृण्वन्नूनिभिः सीद सादम्॥ ऋग्वेद 2/23/1

उपर्युक्त मन्त्र का स्वामी (विषय) ब्रह्मणस्पति है अर्थात् जो समस्त ब्रह्माण्ड का स्वामी परमात्मा है। "ब्रह्म" शब्द के अनेक अर्थ होते हैं जैसे परमात्मा, वेद, यज्ञ, ब्रह्माण्ड, धन, अन्न, मन, प्राण, वाक्, ब्रह्मण, सबसे बड़ा इत्यादि। यज्ञ के चार पुरोहितों में से मुख्य पुरोहित को "ब्रह्मा" कहते हैं। पति का अर्थ होता है:-रक्षक, पालक और स्वामी। उपर्युक्त मन्त्र में परमात्मा के कुछ गौणिक और आलंकारिक नामों जैसे ब्रह्मणस्पति, कवि, ज्येष्ठराज का वर्णन है अतः यह आध्यात्मिक मन्त्र है जिसका अर्थ है-"हे गणों (गणनीय वस्तुओं को गण कहते हैं) के स्वामी - गणपति - परम पिता परमात्मा! आप कवियों के कवि

हैं, उपम (उपमा योग्य) हैं, श्रवणस्तम (श्रवण करने योग्य) हैं, ज्येष्ठराज (परमात्मा सर्वव्यापक होने से सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्रादि श्रेष्ठ पदार्थों में विद्यमान है तथा उसी से प्रकाश प्राप्त कर रहे ये सब प्रकाशित होते हैं इसलिये ईश्वर को 'ज्येष्ठराज' भी कहा जाता है) है। हे ईश्वर! हम आप से विनम्र प्रार्थना करते हैं कि आप हमारे हृदय में आकर विराजो और हमारी रक्षा करो!"

वैदिक 'गणपति' की पूजा : वेद के अनेक मन्त्रों में 'गणपति' शब्द आया है जिसका सरल और सीधा अर्थ होता है- गणों का स्वामी अर्थात् परम पिता परमात्मा। ब्रह्माण्ड में जितनी भी सूक्ष्म और स्थूल वस्तुएँ हैं जिनकी गणना की जा सकती है उनको 'गण' कहते हैं और उनके स्वामी/ रक्षक/पालक/मालिक को 'पति' कहते हैं अतः जो गणों का स्वामी है उसे 'गणपति' कहते हैं। ऐसा और कोई नहीं, वह परमात्मा ही है।

ओ३म् गणानां त्वा गणपतिं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे। निधिनां त्वा निधिपतिं हवामहे। वसो मम आहजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥ यजुर्वेद 23/16

ईश्वर के अनेक गौणिक, कार्मिक, स्वाभाविक और आलंकारिक नाम होते हैं, उनमें से एक नाम 'गणपति' है। यजुर्वेद के उपर्युक्त मन्त्र में ईश्वर को अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है जैसे 'गणपति', 'प्रियपति' तथा 'निधिपति'। यहाँ ईश्वर को 'प्रियपति' अर्थात् वह प्रेम का स्वामी है - सब को प्रेम करता है और सब का प्रिय है। यदि हम मन, वचन और कर्म से अहिंसा का पालन करते हैं अर्थात् सबसे प्रेम करते हैं तो समझो हम 'गणपति' की सच्ची पूजा करते हैं और इसी प्रकार परमात्मा 'निधिपति' है अर्थात् वह धन-ऐश्वर्यों का स्वामी है और धन-ऐश्वर्यों का स्वामी वही हो सकता है जो धन का सही-सही सदुपयोग करता है जो सुपात्रों को, उनकी आवश्यकतानुसार आर्थिक सहायता करता है। वेद कहता है कि आप ख़ूब कमाएँ और ख़ूब धन-ऐश्वर्यों के स्वामी बनें। जिनके

पास धन का अभाव है, जो निर्धन हैं, असहाय हैं उनकी सहायता कर धन का सदुपयोग करें। यदि हम उपर्युक्त मन्त्र में वर्णित गणपति परमात्मा के गुण–कर्म–स्वभाव को अपने जीवन में आचरण में लाते हैं तो समझो हम गणपति की सही पूजा करते हैं – यही 'गणपति पूजा' की वैदिक पद्धति है।

मैंने अनेक सन्तों की जुबानी एक कथा सुनी है, मात्र मनोरंजन के लिये है, किसी को भी समझाने के लिये ठीक है क्योंकि उसमें एक सत्य बात छुपी है। कथा इस प्रकार से प्रारम्भ होती है –

परमात्मा ने जब सृष्टि का निर्माण किया तो उसने सबसे पहले पृथिवी बनाई, फिर वन–वनस्पतियाँ बनाईं, अनेक पशु पक्षी बनाए। यहाँ तक सब कुछ ठीक चल रहा था परन्तु जब से उसने मनुष्य को बनाया, तब से उसकी रात की नींद हराम हो गई। वह चिन्तित रहने लगा। अनेक साधु–सन्त तथा ऋषियों ने इस चिन्ता का कारण पूछा। सब के आग्रह पर परमात्मा ने उत्तर दिया: मनुष्य को उत्पन्न करके मैंने बहुत बड़ी भूल की है। मनुष्य प्रतिदिन मेरे पास अपनी कोई न कोई समस्या लेकर आते हैं। मैं उनसे तंग आ चुका हूँ। बताओ 'मैं कहाँ जाऊँ जहाँ मुझे लोग ढूँढ़ नहीं पाएँ'? सब ने ख़ूब सोचा। अन्त में शिवजी भगवान् ने एक सुझाव दिया कि आप समुद्र के भीतर गहराई में जाकर छुप जाइये। ईश्वर ने कहा – 'मनुष्य बहुत चतुर प्राणी है तथा भविष्य में वह समुद्र की गहराई भी नापेगा और मुझे वहाँ भी ढूँढ़ लेगा और वहाँ भी आकर तंग करेगा – अन्य कोई स्थान बताओ'। फिर शंकरजी ने ध्यान लगाया और प्रार्थना की कि 'आप हिमालय के शिखर पर चले जाएँ, इतनी ऊँचाई पर कोई नहीं पहुँच पाएगा'। परमात्मा ने कहा–'मैंने मनुष्य को इतना ज्ञान–विज्ञान प्रदान किया है कि वह कभी न कभी विमान द्वारा वहाँ भी पहुँच जाएगा।।' सब ने कोई न कोई सुझाव दिया और अन्त में एक वृद्ध सन्त ने ईश्वर के कान में कुछ कहा।

परमात्मा उसकी बात सुनकर प्रसन्न हुए और कहा –'हाँ! यह ठीक है।' सब साधु-सन्तों एवं ऋषियों में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि आख़िर ईश्वर किस बात पर इतने प्रसन्न हुए हैं? वे विनम्रता से पूछने लगे 'भगवन्! हमें भी तो बताइये'। परमात्मा ने मुस्कराकर कहा –'मैं इस बात से प्रसन्न हुआ हूँ कि यदि में प्राणियों के हृदय में जाकर रहूँगा तो वहाँ मुझे कोई मनुष्य खोज नहीं पाएगा – क्योंकि मनुष्य की आँखें मुझे बाहर सब स्थान पर ढूँढ़ने का प्रयास करेंगी परन्तु वह अपने भीतर अन्तःकरण (हृदय) में खोजने की कोशिश नहीं करेगा और जब तक वह अपने अन्दर मन में नहीं झाँकेगा; मैं उनके लिये निराकार ही रहूँगा – यही ठीक है।' । तब से वह परमात्मा अदृश्य रूप से सब के हृदय में विराजमान है।

कथा रहस्य : लोग पर्वतों की चोटी पर साधना करने जाते हैं। नदियों के किनारे पूजा-पाठ करते हैं। तीर्थों के नाम पर पृथिवी के हर कोने में जाते हैं। अनेक मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे और गिरिजा घरों में जाते हैं। साधु, बाबा, सन्त, तथा बापुओं के आश्रमों में जाते हैं। यहाँ तक कि उनकी मृत्यु के बाद उनकी समाधियों पर भी माथा टेकने जाते हैं। अपने घरों में भी मन्दिर बनाते हैं। पत्थर की काल्पनिक मूर्तियों पर अनमोल रत्नादि की भेंटें चढ़ाते हैं परन्तु आज तक किसी ने नहीं कहा कि "मैंने ईश्वर को साक्षात् देखा है"। जानते हैं क्यों? क्योंकि परमात्मा अनुभव का विषय है, उसकी अनुभूति होती है। ईश्वर इन्द्रियों का विषय नहीं है क्योंकि वह निराकार है। आत्मा भी निराकार है और परमात्मा भी निराकार; क्योंकि दोनों चेतन तत्त्व हैं और चेतन ही चेतन को जान सकता है।

हम उसे बाहर संसार में सब जगह ढूँढ़ते फिरते हैं परन्तु वहाँ नहीं ढूँढ़ते जहाँ हम (स्वयं) रहते हैं। परमात्मा सर्वव्यापक है, वह सर्वदा सब स्थान में ओत-प्रोत विद्यमान है। समस्त ब्रह्माण्ड में कोई ऐसा रिक्त स्थान नहीं जहाँ उसकी सत्ता न हो परन्तु

आत्मा (जीव या जीवात्मा) स्वभाव से एक देशी अणु होने से मात्र एक स्थान पर ही रहता है और जिस शरीर को धारण करता है वहीं रहता है। ईश्वर सर्वव्यापक होने से आत्मा में रहता है। मनुष्य के लिये परमात्मा से मिलने का यही एकमात्र स्थान है। एक और विशेष बात जानने योग्य है कि जब तक हम अपने मन-मन्दिर (हृदय) को काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष तथा ऐषणाओं जैसी मलीनता से स्वच्छ नहीं रखते तब तक अपने प्यारे प्रीतम परम पिता परमात्मा की अद्‌भुत अनुभूति नहीं कर सकते। यही प्रभु का दर्शन कहाता है।

कथा का सार भी यही है कि हमारा 'गणपति बाप्पा' भगवान् सर्वव्यापक होने से सब मनुष्यों के हृदय में साक्षी बनकर अनादि काल से विराजमान है। वह कभी किसी का साथ नहीं छोड़ता, सदा अंग-संग रहता है। इस शरीर के जन्म से पूर्व भी वह हमारे साथ था, आज भी है और मृत्यु के पश्चात् भी हमारे साथ रहेगा। यदि इतनी छोटी सी बात समझ में आ जाए तो फिर उसे किसी की बनाई मूर्ति या कहीं ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य को अपने ही मन में झाँकने की देर है। यदि मन स्वच्छ है और उसमें किसी भी प्रकार का छल-कपट नहीं है, तो उस प्रभु के दर्शन अवश्य हो जाएँगे। संसार में जितनी अधिक तथाकथित धामों की यात्राएँ करेंगे, वहाँ ईश्वर को ढूँढ़ने की प्रयत्न करेंगे; परमात्मा को कभी नहीं पा सकेंगे। वह सब के घट-घट में सदा से विराजमान है, वह बाहर नहीं अपने अन्दर ही मिलेगा। एक बार अपने अन्दर की यात्रा करके देखें, मन की आँखें खोलें, ज्ञान चक्षुओं से उसे देखने का प्रयत्न करें तो प्यारे प्रभु को अवश्य पाएँगे।

2) गणपति अर्थात् यज्ञ या यज्ञाग्नि :

वैदिक साहित्य में गणपति का दूसरा अर्थ होता है - यज्ञ या यज्ञाग्नि। यज्ञ का दूसरा नाम 'गणपति अर्थात् प्रजापति' है क्योंकि यज्ञ से समस्त प्रजाओं का पालन होता है, उपकार होता

है अत: 'यज्ञ' को 'प्रजापति' भी कहते हैं। विज्ञान भी इस बात की पुष्टि करता है कि यज्ञ (अग्निहोत्र) करने से घी और सामग्री इत्यादि अग्नि के द्वारा सूक्ष्म होकर वातावरण को शुद्ध करते हैं जिस से सब जीवों का परोपकार होता है। घी तथा अनेक रोगनाशक जड़ी-बूटियों और पौष्टिक पदार्थों से बनी सामग्री अग्नि के संयोग से सूक्ष्म होकर वायु को शुद्ध और पवित्र बनाते हैं, जिसके कारण मनुष्य ही नहीं, अपितु सब प्राणी शुद्ध वायु का सेवन कर स्वस्थ रहते हैं। इसके अतिरिक्त वायु सूक्ष्म होने के कारण ऊपर अन्तरिक्ष में बादलों को वर्षा करने में सहायता करता है। वर्षा का पानी दूर-दूर तक खेत-खलिहानों में पौष्टिक और अधिक मात्रा में फ़सल उत्पन्न करता है। इस गुण की वजह से यज्ञ को प्रजापति कहते हैं क्योंकि यज्ञ प्रजा का पालक होने से प्रजापति कहाता है। यज्ञ गणपति/प्रजापति का साक्षात भौतिक स्वरूप है।

यदि आपने यज्ञ की प्रज्वलित अग्नि की लपटों को ग़ौर से देखा होगा तो वह आधुनिक प्रचलित गणेशोत्सव में पूजे जाने वाले हाथी के मुख वाले 'गणपति' की प्रतिमा के समान दिखती हैं। यज्ञाग्नि यज्ञकुण्ड में फैली हुई और ऊपर की लपटें टेढ़ी-मेढ़ी होती हैं। इसी दृश्य को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वास्तव में एक विद्वान् कलाकार ने गणपति की मूर्ति में सर्वव्यापक परमात्मा तथा देश का राष्ट्रपति के गुण-कर्म-स्वभाव और प्रजापति अर्थात् यज्ञाग्नि को दर्शाने का प्रयास किया है - जो सराहनीय है। हाथी मुख वाले गणपति की प्रतिमा को 'वक्रतुण्ड' (टेढ़े मुँह वाला), 'लम्बोदर' (बड़े पेट वाला) और 'महाकाय' (विशाल शरीर वाला) कहते हैं। अब आप गणपति की प्रतिमा को ध्यान से देखें:-

गणपति के चार हाथ चारों दिशाओं के प्रतीक हैं (हवनकुण्ड चौकोर होता है, उसके चार कोने होते हैं)। भव्य विशाल काया सर्वव्यापकता का प्रतीक है क्योंकि यज्ञाग्नि में भेंट की गई

आहुतियाँ सारे विश्व को प्राप्त होती हैं। गणपति का चमकता नारंगी लाल रंग अग्नि का प्रतीक है और गणपति की मूर्ति जल में विसर्जित की जाती है - जिसका स्पष्ट अर्थ है कि जो वस्तु बनी है या जिस वस्तु का निर्माण होता है उसका विनाश अवश्य होता है (यज्ञाग्नि को जल ही ठंडा करता है)। गणपति (यज्ञाग्नि) को वक्रतुण्ड (टेढ़े मुख वाला) कहते हैं क्योंकि अग्नि की लपटें भी टेढ़ी होती हैं। गणपति को विघ्नहर्त्ता एवं सुखप्रदाता कहते हैं क्योंकि यज्ञ से सब के विघ्न (कष्ट) दूर होते हैं तथा सब का कल्याण होने से सुख प्राप्त होता है (प्रजापति सब का भला करता है। इस प्रकार गणपति की प्रतिमा को बड़ी सूझ-बूझ के साथ बनाया गया है। मूर्ति को प्रतीक मानने में कोई आपत्ति नहीं है परन्तु मूर्ति को चेतन भगवान् मानकर पूजा और आरती करना मात्र अधर्म है, परमात्मा का निरादर करना है। मूर्ति की पूजा करना नास्तिकता का प्रतीक है।

3) गणपति अर्थात् राष्ट्रपति : गणपति का तीसरा अर्थ है - देश का राजा या राष्ट्रपति। गण अर्थात् जन-समूह और पति का अर्थ है - पालन करने वाला अतः 'गणपति' देश के राष्ट्रपिता या राष्ट्रपति को कहते हैं। राष्ट्रपति ही राष्ट्र की समस्याओं का समाधान करने में सक्षम होता है। वही राष्ट्रपति अपनी जनता का पिता के समान पालक और रक्षक होता है। लौकिक भाषा में 'गण' का अर्थ होता है - प्रजा और प्रजातन्त्र में प्रजा के सर्वोच्च अधिकारी को प्रजापति या राष्ट्रपति कहते हैं। अतः गणपति का अर्थ ईश्वर के अतिरिक्त 'प्रजापति' तथा 'राष्ट्रपति' भी समझना चाहिये क्योंकि वर्तमान में राष्ट्रपति ही अपने देश में जनता का स्वामी, हितैषी, पालक और रक्षक होता है।

लोकप्रिय महानायक गणपति की काल्पनिक प्रतिमा का दर्शन : 'गणपति' के बारे में विभिन्न पुराणों में विभिन्न कहानियाँ हैं। कौन से पुराण में सत्य बातें हैं और कौन से पुराण

में असत्य। कोई भी बुद्धिजीवी, सृष्टि नियम के विरुद्ध की बातों को नहीं मान सकता और जो लोग अनहोनी बातों में विश्वास करते हैं, उन्हीं के कारण अनेक प्रकार के पाखण्ड एवं शंकाएं उत्पन्न हो जाती हैं। मननशील व्यक्ति को ही मनुष्य कहते हैं क्योंकि उसमें विचार शक्ति होती है। जो सत्य के अनुरूप विचारता है वही निर्णय कर सकता है।

हम इससे पूर्व लिख आए हैं फिर अपने पाठकवृन्द को याद दिलाना चाहेंगे कि 'पुराण' का अर्थ होता है—पुराना अतः ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित पुस्तक को 'पुराण' कहते हैं। प्राचीन इतिहासकारों ने अनेक पुराण लिखे हैं। पुराण हमें अपनी पुरातन संस्कृति एवं सभ्यता का दर्शन कराते हैं। आजकल जो बाज़ारों में पुराण उपलब्ध हैं उनको पढ़ने के उपरान्त इतना तो अवश्य पता पड़ ही जाता है कि कालान्तर में कुछ बातें अवश्य मिश्रित की गई हैं, जो प्रकृति नियमों के विरुद्ध होने से विश्वास करने के योग्य नहीं हैं। निश्चय ही कुछ स्वार्थी लोगों ने हमारी संस्कृति तथा सभ्यता के साथ खिलवाड़ करने का प्रयास किया है जो अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है। संसार का गुरु कहलाने वाला 'आर्यावर्त' (वर्तमान का भारत) क्या आज के पुराणों की बातों को भला कैसे अपना कह सकता है? कोई भी बुद्धिजीवी अप्राकृतिक, अनहोनी, असत्य बातों को नहीं मान सकता – क्या यह अच्छी बात है? हमें गर्व है कि हमारे पुराणों में अनेक बातें वैदिक संस्कृति के अनुरूप हैं तथा प्रकृति नियमों के अनुकूल हैं परन्तु जो-जो बातें प्रतिकूल हैं उनको त्याग देना ही सही है। थोड़ा-बहुत गणित सभी जानते हैं— दो और दो चार होते हैं किन्तु कोई कहे 'दो और दो साढ़े चार होते हैं तो क्या कोई मानेगा? एक दूसरा प्रश्न—पाँच घोड़ों में से तीन गायों को निकाल दो तो कितने घोड़े बचेंगे? प्रश्न को सुनते ही आप उस प्रश्न करने वाले व्यक्ति पर हँसोगे कि क्या घोड़ों में से कभी गायें अलग हो सकती हैं क्योंकि दोनों भिन्न-भिन्न जाति के पशु हैं

अतः प्रश्न ही ग़लत है, उसका उत्तर नहीं हो सकता।

अब हम सुप्रसिद्ध लोकनायक गणनायक श्री गणपति महाराज की बातें करेंगे। शिल्पकार की बनाई काल्पनिक गणपति की प्रतिमा के दर्शन करें। मनमोहक मूर्ति, एकदन्त, मुकुटधारी, गोरा रंग, विशाल काया, चार भुजाओं में अलग-अलग वस्तुएँ, लम्बी नाक, बड़े कान, ऐसी प्रतिमा कि उसे देखते ही रहें। क्या हमें उसमें ईश्वर के अनेक गुणों की समानता नहीं दिखाई देती? ऐसे लगता है कि परमात्मा साक्षात हमारे सामने विराजमान हैं। है ना?

यह गणपति की मात्र कल्पना है क्योंकि सच्चा 'गणपति' (गणों का स्वामी परम पिता परमेश्वर) निराकार होता है। उसका न तो रूप है न ही रंग। वह काया रहित है इसलिये उसे 'अकाय' कहते हैं परन्तु कलाकार ने ईश्वर की कल्पना करके उसे 'महाकाय' के रूप में दर्शाया है। उसकी पहुँच और ख्याति समस्त ब्रह्माण्ड में दूर-दूर तक विद्यमान है (लम्बी सूंड)। उसकी दृष्टि इतनी तेज़ है कि कोई उसकी नज़र से बच नहीं सकता (छोटी आँखें बहुत दूर तक देखती हैं)। वह भरपूर भण्डार वाला है (लम्बोदर)। वह सब की बातें सुनता है (बड़े कानों वाला)। वह परमात्मा सब से शक्तिशाली है (गणपति की विशाल काया) गणपति की सवारी मूषक है अर्थात् कोई छोटा हो या बड़ा उसके लिये सब समान हैं अर्थात् वह सदैव सब के साथ रहता है एवं किसी के साथ पक्षपात् नहीं करता। यदि इस प्रकार से गणपति की मूर्ति को देखें तो कोई आपत्ति जनक बात नहीं है परन्तु उस मूर्ति को ईश्वर की तरह पूजा जाए तो वह अवैदिक कार्य है। ईश्वर के स्थान पर मूर्ति को पूजना मात्र मूर्खता है।

प्रचलित हाथी मुखवाले गणपति : इस प्रकार के 'हाथी मुखवाले' प्राणी की रचना काल्पनिक है। ऐसे प्राणी की रचना ईश्वर भी नहीं करता है। वह प्राकृतिक नहीं हो सकती। वास्तव में ऐसा कोई भी प्राणी न हुआ है और न ही कभी भविष्य में हो

सकता है क्योंकि प्रकृति नियमानुसार सिर हाथी का और शेष शरीर मनुष्य का हो - यह सम्भव नहीं है! ईश्वर सर्वज्ञ है अतः उसकी समस्त रचना में कभी कोई ग़लती, भूल या त्रुटि नहीं हो सकती है। यह मात्र अल्पज्ञ मनुष्य की ही सोच हो सकती है। मनुष्य स्वभाव से स्वतन्त्र है अतः अपनी ज्ञानक्षमतानुसार जो चाहे सोच सकता है तथा कार्य कर सकता है। यह उसकी इच्छा पर निर्भर है कि वह कुछ करे, बिल्कुल नहीं करे या विपरीत करे। वह कल्पना करने में स्वतन्त्र है, चाहे तो कोई भी आकृति बना सकता है, जैसा कि वर्तमान में चलचित्रों में (ऐनीमेशन के द्वारा) दर्शाया जाता है। इसलिये हमारे पुराणों में कुछ भी हो सकता है, कैसी भी कहानी मिलाई जा सकती है क्योंकि कोई पूछने वाला नहीं है। किसी के पास इतना समय नहीं है कि वह किसी सुलझे विद्वान् ऐसे बौद्धिक प्रश्न पूछे। यही कारण है कि आधुनिक पढ़े-लिखे लोग भी ऐसे प्रश्न करने से कतराते हैं।

आधुनिक गणेशोत्सव

हमारा भारत देश सचमुच महान है और जिसने भी कहा है ठीक ही कहा है कि वह पूरे विश्व की माथे की बिंदिया के समान है क्योंकि सारे विश्व में भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जिसमें दुनिया भर के सभी त्यौहारों को बिना किसी भेदभाव के और बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है।

श्रावणी पर्व के समाप्त होते ही 'गणेशोत्सव' का त्योहार मनाया जाता है जिसका शुभारम्भ हुआ तो मुम्बई से था परन्तु देखते ही देखते अब सारे विश्व में जहाँ-जहाँ भारतीय मूल के लोग रहते हैं वहाँ बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। महाराष्ट्र में दीवाली के बाद यही एकमात्र ऐसा त्यौहार है जो सब से अधिक मनाया जाता है।

यह 'गणेशोत्सव' का त्यौहार है जिसमें पौराणिक दन्तकथाओं के आधार पर काल्पनिक गणपति महाराज की प्रतिमा/मूर्ति बनाकर खूब सजाया जाता है। डेढ़ दिन से लेकर ग्यारह दिनों तक गणपति की प्रतिमा को अपने घर में, दुकान में, मुहल्ले में, गली में, चौड़े चौराहों पर तथा खुले मैदानों में सार्वजनिक गणपति की मूर्तियाँ रखते हैं और प्रातः और सायं काल में ढोलक-बाजों के साथ गणपति की आरती एवं वंदना होती है और प्रसाद वितरण होता है। अनेक स्थानों पर फिल्मी गाने-बजाने होते रहते हैं और रात्रि के समय चलचित्र द्वारा मनोरंजन करते हैं। इसी मौज-मस्ती में ये दस-ग्यारह दिन कैसे बीत जाते हैं, मालूम ही नहीं पड़ता। कई लोग अपने घरों में अपनी सुविधानुसार डेढ़

दिन, तीन दिन, पाँच दिन, सात दिन, दस दिन तक गणपति की प्रतिमा समय समाप्ति के दिन रखते हैं और धूम-धाम से गाते-बजाते उस प्रतिमा को जल समाधि दे देते हैं। बड़ी-बड़ी सार्वजनिक प्रतिमाएँ ग्यारहवें दिन सायं काल से लेकर देर रात्रि तक जल प्रवाहित होती रहती हैं। इन दस-ग्यारह दिनों तक पूरे देश में मुख्यतः मुम्बई में जश्न का माहौल बना रहता है।

दस दिवसीय चलने वाला 'गणेशोत्सव' भाद्रपद शुद्ध चतुर्थी से अनन्त चतुर्दशी तक, देश- विदेश में (जहाँ भारतीय मूल के लोग रहते हैं), बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। प्रचलित गणपति प्रतिमा की स्थापना होती है तथा उसकी प्रातः-सायं पूजा अर्चना होती है और ग्यारहवें दिन उस प्रतिमा को सजा-धजा कर सर्वप्रथम उसकी शोभा यात्रा निकाली जाती है और मराठी भाषा में 'गणपति बाप्पा मोरया - पुढचा वर्षी लवकर या' अर्थात् 'हे मोरया के गणपति बाप्पा - अगले बरस तू जल्दी आ' के नारे लगाते हुए पास के समुद्र या तालाब के तट पर पहुँचकर अन्तिम बार नारियल, फूल तथा कपूर से गणपति प्रतिमा की पूजा-अर्चना तथा भेंट कर, उसे जल में विसर्जित कर देते हैं। हिन्दुओं की ऐसी मान्यता है कि गणपति महाराज हम सब के दुःखों को दूर करते हैं और जल समाधि द्वारा कैलास को वापस लौट जाते हैं।

दस दिवसीय चलने वाला 'गणेशोत्सव' सब उत्सवों से निराला है। भारत के सभी छोटे-बड़े गाँव तथा नगरों में, विशेषकर महाराष्ट्र में, गणेशोत्सव एक विशेष पर्व के रूप में मनाया जाता है जिसका मुख्य आकर्षण केन्द्र मुम्बई और पुणे रहता है। वास्तव में इन दिनों गणपति (परमात्मा) की पूजा कम और उसके स्थान पर मात्र जड़ प्रतिमाओं की पूजा अधिक होती है। गणपति जी के मन्दिरों विशेषकर मुम्बई स्थित 'सिद्धिविनायक मन्दिर' को ख़ूब सजाया जाता है। गली, मुहल्लों तथा रास्तों के बीचों-बीच मण्डपों को सजाया जाता है, उनमें हाथी-सिर वाले

गणपति की प्रतिमाओं को स्थापित कर, पूजा-पाठ के नाम पर अधिक से अधिक जनता को आकर्षित करने का प्रयास किया जाता है। जितनी बड़ी प्रतिमा, उतनी बड़ी कतार में, श्रद्धालु महानुभावों का हुजूम भगवान् गणपति के दर्शनार्थ जमा होता है और जितने अधिक लोग, उतनी अधिक मात्रा में दान, दक्षिणा, धन, सोने-चाँदी के गहने तथा भिन्न-भिन्न प्रकार की भेंटें इकट्ठी होती हैं। गणपति दर्शन के नाम पर लोग अपने काम-काज से छुट्टी लेकर अपने बच्चों के साथ तफ़रीह करते हैं। एक-दूसरे की देखा-देखी में, आज-कल यह फ़ैशन सा बन गया है कि गणेशोत्सव के अवसर पर लोग अपने घरों, दुकानों तथा दफ़्तरों में भी काल्पनिक हाथी-सूँड वाले गणपति महाराज की प्रतिमा को स्थापित कर, अपने रिश्तेदारों, सगे-सम्बन्धियों, मित्रों इत्यादि को अपने यहाँ 'गणपति जी' के दर्शनार्थ निमन्त्रण देते हैं।

इन मण्डपों में मात्र प्रातः और सायं गणपति महाराज जी की स्तुति पाठ एवं आरती होती है, प्रसाद बाँटा जाता है और शेष समय आपसी स्नेह मिलन तथा गीत-संगीत के कार्यक्रम होते रहते हैं। इसी प्रकार से श्री गणेश जी की प्रतिमाओं की पूजा के कार्यक्रम देखने सुनने को मिलते हैं।

इन दिनों लोगों में उत्साह और प्रसन्नता की लहर छाई रहती है। पण्डालों के बाहर गणपति-प्रतिमा के दर्शन हेतु लोगों की लम्बी कतारें लगती हैं। दान-दक्षिणा के नाम पर रोकड़ा, सोने-चाँदी के गहने, फूल मालाएँ, नारियल तथा अनेक भेंटें इकट्ठी होती हैं, जिनको त्यौहार समाप्ति के पश्चात् नीलामी करके बेचा जाता है और उस आय को ट्रस्ट के कार्यों में व्यय किया जाता है। यहाँ तक तो ठीक है परन्तु पाषाण मूर्तियों को ईश्वर मानकर पूजा करना तथा जड़ में चेतन की आस्था रखना उचित नहीं है परन्तु आश्चर्य की बात है कि ये सब अनर्थ हमारे स्वार्थी राजनेताओं तथा प्रशासन की देख-रेख में ही सम्पन्न होता है।

विशेष : धर्म के क्षेत्र में यदि राजनीति को महत्त्व दिया जाता है तो भविष्य में इसका परिणाम बहुत गम्भीर होता है और यदि राजनीति भी अन्धविश्वासों में विश्वास करने लगे तो उस देश के पतन को कोई रोक नहीं सकता। दूसरी ओर इसके विपरीत यदि राजनीति में धार्मिकता का आगमन हो जावे तो देश दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति और प्रगति की ऊँचाइयों को छू सकता है।

गणेशोत्सव के पवित्र एवं शुभावसर पर वह सब कुछ होता है – जो नहीं होना चाहिये। धर्म की आड़ में अधर्म की जड़ों को सींचा जाता है और अधर्म को ही धर्म बताकर साधारण लोगों के साथ अन्याय किया जाता है। गणपति–उत्सव अवश्य मनाना चाहिये परन्तु धर्म के नाम पर अधर्म कदापि नहीं!

उत्सव अवश्य मनाने चाहियें, धूम–धाम से मनाने चाहियें। दस–ग्यारह दिवसीय चलने वाले 'गणेशोत्सव' की तैयारियाँ बहुत पहले से ही प्रारम्भ की जाती हैं जिसमें जनता का अमूल्य समय, धन तथा शक्ति का अत्यन्त दुरुपयोग किया जाता है, विशेषकर बिजली का! सब कुछ जानते हुए भी शासन कुछ नहीं कर पाता। अस्वस्थ मानसिकता के लोग इस महोत्सव की आड़ में ऐसी–ऐसी अश्लील हरकतें करते हैं जिसका वर्णन यहाँ करना उचित नहीं है। इन दिनों में (पुलिस की निगरानी के पश्चात् भी) महिलाओं के साथ छेड़–छाड़, बदसलूकी, लूट–पाट तथा मारामारी इत्यादि की वारदातें होती हैं जिसके कारण प्रशासकीय व्यवस्था पर अधिक दबाव और बोझ बढ़ जाता है। सार्वजनिक गणेशोत्सव का पूरा ख़र्च नगरवासियों और दुकानदारों को भुगतना पड़ता है। इस कार्य के लिये समाज के निकम्मे और बिगड़े तत्त्वों द्वारा वसूली की जाती है। वसूली न होने पर शान्तिप्रिय नागरिकों को सताया जाता है। धर्म के नाम पर अधर्म होता है।

पाठकवृन्द वर्तमान की तस्वीर को भी देख लें कि लोग 'गणपति' को कितना प्रेम करते हैं। सर्वविदित है कि आज के युग में जितनी दुर्दशा देवों के देव 'गणपति' (अर्थात् उसकी काल्पनिक मूर्ति) की हुई है उतनी कभी किसी अन्य प्रतिमा की नहीं हुई है। जिस प्रतिमा की अधिकतर लोग सब से अधिक पूजा -अर्चना करते हैं, जिस का सर्वाधिक आदर-सम्मान किया जाता है, प्रत्येक शुभ कार्य करने से पूर्व जिस इष्ट देवता की आरती उतारी जाती है उसी परम पूज्यनीय गणपति जी की मूर्ति का अपमान और अपयश करने में लोगों को ज़रा भी डर नहीं लगता! अपने ही लोगों ने उसका मज़ाक बनाया है। गणपति की मूर्ति के समक्ष फिल्मी धुनों पर थिरकते-नाचते हैं, गाते हैं, बजाते हैं और मण्डप की आड़ में न जाने क्या-क्या गुल खिलाए जाते हैं। क्या आपने कभी किसी अन्य मत-मतान्तर, मज़हब, सम्प्रदाय या जाती-पांति के लोगों को उनके कुल देवी-देवता, इष्ट-देवता, गुरु या पीर-पैगम्बर के उत्सव में ऐसा होते देखा या सुना है?

'बाल गणेश' के एनीमेटेड काल्पनिक मज़ाकिया चलचित्र, एवं अनेक फ़िल्में बनी हैं जिनमें गणपति को साधारण बच्चों की तरह उछल-कूद करते दर्शाया जाता है, चूहे के साथ खेलना, नंदी बैल के साथ लड़ना, अपने पिता शंकर भगवान की बात नहीं मानना, दूसरों का मज़ाक उड़ाना इत्यादि। गणपति क्रिकेट खेल रहे हैं, फुट-बॉल खेल रहे हैं, पहाड़ों से कूद रहे हैं, बीड़ी के कवर पर गणपति, माचिस की डिबिया पर गणपति, पटाख़ों के ऊपर गणपति की तस्वीर, बाज़ार में हर साईज़ और रंग के अनेक सजावटी (शो-पीस) गणपति की प्रतिमाएँ, हर डेकोरेशन के लिये गणपति, चाय के कप पर गणपति की फ़ोटो, ग्लास पर भी गणपति, खिलौने पर गणपति, यह गणपति नहीं हुआ कोई मज़ाक बन गया है। **न भूतो न भविष्यति।** यदि आज इन हरकतों को नहीं रोका गया तो वह दिन दूर नहीं जब शराब की

बोतलों पर भी गणपति की तस्वीर लगाकर बेची जाएगी।

समय बदल गया है और समय के साथ के गणपति की मूर्ति के रूप-रंग में भी परिवर्तन हो गया है। पहले श्री गणेश की मूर्तियाँ मिट्टी की हुआ करती थीं जिसका रंग अग्नि के समान नारंगी-लाल हुआ करता था परन्तु वर्तमान में गणपति महाराज सब रंगों में, सब प्रकार के धातुओं तथा लकड़ियों में और मनचाही आकृति में उपलब्ध हो जाते हैं।

आजकल तो गणेशोत्सव के अवसर पर गणेश जी की मूर्ति के साथ अनेक देवी-देवताओं को भी जोड़ा जाता है। गणेश जी के दोनों ओर उनकी दो पत्नियाँ रिद्धि और सिद्धि, गणपति के साथ शिव और पार्वती, गणपति के साथ कभी हनुमान तो कभी साईं बाबा, कभी काली माता तो कभी दुर्गा माता अर्थात् जो मूर्तिकार को अच्छा लगता है वही शिल्पकारी में दर्शाते हैं। गणेश जी कभी चूहे की सवारी करते हैं तो कभी माता जी के शेर के ऊपर नज़र आते हैं और कभी शंकर जी के काले सर्पों के फन के ऊपर सवारी करते हैं। गणपति को किसी भी मुद्रा में खड़ा करो या बिठा दो या फिर नृत्य करा दो - सब कलाकार के हाथों में है। कलाकार उन्हीं मूर्तियों का निर्माण करते हैं जैसा लोग चाहते हैं क्योंकि हर काम में केवल पैसा ही बोलता है। मिट्टी के पुतले को कहीं भी बिठाओ या खड़ा कर दो, इससे उस मूर्ति को क्या फ़र्क पड़ने वाला है? गणपति भले ही मिट्टी का हो या किसी धातु का, उसे मज़ाक का रूप नहीं देना चाहिये। इससे हमारी सभ्यता और संस्कृति पर प्रभाव पड़ता है।

गणपति प्रतिमा विसर्जन का अद्भुत दृश्य : गणेशोत्सव की अन्तिम समाप्ति दसवें दिन होती है। दस दिनों तक गणेशोत्सव की धूम मची रहती है। इससे पूर्व भी लिख आए हैं कि कुछ लोग गणपति प्रतिमा का स्थापन अपने घर या दफ़्तर में डेढ़ दिन के लिये ही करते हैं। कुछ लोग तीन दिन, पाँच दिन अथवा सात दिन तक ही रखते हैं। सार्वजनिक गणपति का विसर्जन दसवें

दिन ही होता है और विसर्जन की क्रिया ग्यारहवें दिन प्रातःकाल तक चलती है।

मुम्बई तथा पुणे जैसे महानगरों में विशाल गणपति के विसर्जन में पूरा दिन लग जाता है। मुम्बई स्थित सुप्रसिद्ध **'लाल बाग का राजा'** नामक गणपति की प्रतिमा की विसर्जन यात्रा धूम-धाम से निकाली जाती है जिसमें सभी मत-सम्प्रदाय के लाखों की संख्या में श्रद्धालु भक्तजन (हिन्दू, मुस्लिम, सिख एवं ईसाई) बिना भेद-भाव के भाग लेते हैं। लगभग बाईस घण्टे की यात्रा के पश्चात् हिन्द महासागर के प्रसिद्ध चौपाटी के किनारे अन्तिम श्रद्धान्जलि के साथ विशाल प्रतिमा 'लाल बाग के राजा' को बीच समुद्र में विसर्जित किया जाता है। गणपति की अन्तिम विदाई का सारा कार्यक्रम पुलिस की कड़ी निगरानी में होता है। इसका पूरा जीवन्त (लाइव) प्रसारण देश के सब टी॰वी॰ चैनल करते हैं।

'गणपति' यज्ञाग्नि का प्रतीक है जो जल से ही शान्त होती है। यही कारण है कि गणपति प्रतिमा को जल समाधिस्थ किया जाता है। अग्निस्वरूप गणपति की मूर्ति को जल के भीतर छोड़ा जाता है।

गणेशोत्सव का प्रारम्भ : स्वतन्त्रता की लड़ाई के दौरान भारत के सुपूत स्वतन्त्रता सेनानी अमर हुतात्मा बाल गंगाधर तिलक ने सर्वप्रथम सार्वजनिक "गणेशोत्सव" का प्रारम्भ मुम्बई में गिरगाँव स्थित 'केशवजी नाइक चाल' में सन् 1892 में किया। उत्सव के पीछे उद्देश्य यह नहीं था कि जनता मूर्तिपूजा में उलझ जाए अपितु लक्ष्य कुछ और ही था कि इसके बहाने अनेक लोग एकत्रित होंगे वे भारतीय जनता को संदेश देना चाहते थे कि हमारे स्वतन्त्र देश का होने वाले शासक (राजा) का गुण-कर्म-स्वभाव कैसा होना चाहिए! गणपति की काल्पनिक प्रतिमा द्वारा वे जनता को समझाने और जागृत करने का यह अनोखा ढंग था। अंग्रेज़ी शासन से पीछा छुड़ाने का यह एक

अनूठा तरीका था। 'गणपति की मूर्ति' एक योग्य राजा के सम्पूर्ण गुण-कर्म-स्वभाव को दर्शाती है। अंग्रेज़ी राज्य में लोगों का एकत्रित होना तत्कालीन अंग्रेजी सरकारी नियमों के विरुद्ध था; परन्तु धर्म के आड़े कोई सरकार नहीं आती, इसी का लाभ उठाते हुए 'गणेशोत्सव' के बहाने उन्होंने बड़ी सूझ-बूझ से काम लिया। 'गणपति' के उत्सव का सहारा लेकर लोगों को जमा करना आसान हो गया। सार्वजनिक पूजा के बहाने यह एक अद्भुत तरीका था जिसके द्वारा राष्ट्र सेवकों को संदेश मिल सके।

तब से आज पर्यन्त मुम्बई की ही तरह, दस दिवसीय गणेशोत्सव, पूरे भारत में मनाया जाने लगा है। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध पूना शहर में सर्वप्रथम गणेशोत्सव की प्रतिमा की स्थापना 'दगड़ू सेठ' के नाम से प्रसिद्ध है। प्रतिवर्ष अधिक से अधिक लोग इस उत्सव में शामिल होते रहते हैं। हिन्दुओं के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदाय के लोग भी उतने ही हर्षोल्लास के साथ गणेशोत्सव को मनाते हैं। आपसी भाई-चारे का यह सर्वश्रेष्ठ त्यौहार माना जाता है।

मूर्तिपूजा का चलन

वास्तव में जिस कलाकार ने भी 'गणपति की प्रतिमा' का निर्माण किया होगा वह बहुत ही विवेकशील एवं ज्ञानवान रहा होगा क्योंकि 'गणपति की मूर्ति' निम्नलिखित तीन विभूतियों के गुणों का प्रतीक है जिसको देखकर बहुत कुछ समझा और सीखा जा सकता है। जिसका वर्णन हम इससे पूर्व कर आए हैं।

इतिहास गवाह है कि पुरातन काल में मूर्ति पूजन नहीं था। राम (लगभग तेरह लाख वर्ष पूर्व) और कृष्ण (लगभग पाँच हजार साल पहले) के समय में भी मूर्ति-पूजा का नामोनिशाँ नहीं था। वाल्मीकी रामायण तथा महाभारत को देखिये, कहीं भी मूर्तिपूजा का वर्णन नहीं है। कालान्तर में पौरणिकों ने अपने-अपने ढंग से 'रामायण' की रचना की और प्रक्षेप (मिलावट) कर, 'रामायण' में भी मूर्तिपूजा का वर्णन जोड़ दिया गया है कि राम ने लंकाधीश रावण पर आक्रमण करने से पहले रामेश्वरम् में शिवजी की प्रतिमा बनाकर पूजा-अर्चना की। श्रीराम वेद पढ़े थे, वेदों के ज्ञाता थे अतः वेद विरुद्ध कार्य नहीं कर सकते थे। महाभारत तक सब कुछ ठीक था। सच्चे निराकार परमात्मा की पूजा होती थी। महाभारत के पश्चात् ही समाज में अनेक कुरीतियों ने पैर पसारने प्रारम्भ किये और मत-मतान्तर होने पर स्वार्थ पूर्ति के कारण मूर्तिपूजा का चलन प्रारम्भ हो गया।

इतिहास के अनुसार मूर्तिपूजा का चलन आज से लगभग 2600 वर्ष पूर्व बौद्ध तथा जैनियों द्वारा प्रारम्भ किया हुआ है। उन्होंने अपने तीर्थंकरों की मूर्तियाँ बनाकर पूजा का नया विधान बनाया। उनकी प्रसिद्धि तथा आकर्षण को देखकर हिन्दुओं ने भी

अपने पूर्वजों (भगवान् शंकर, श्री राम एवं श्री कृष्ण) की काल्पनिक प्रतिमाओं तथा देवी-देवताओं और अपने पूर्वजों की मूर्तियाँ बनानी प्रारम्भ कीं। इस प्रकार देखा-देखी में अन्य मत-मतान्तर तथा पन्थ-सम्प्रदाय के लोगों ने भी मूर्तियों को प्राथमिकता दी। उन मूर्तियों को सुरक्षित रखने के लिए, विभिन्न सम्प्रदाय के लोगों ने, अपनी-अपनी मान्यतानुसार, जगह-जगह पर भवन, जिसको हम मन्दिर, मस्जिद, गिरिजाघर, गुरुद्वारे तथा दरगाह कहते हैं, बनाते चले गए। यहीं से मूर्तिपूजा अर्थात् 'पत्थर-पूजा' का चलन प्रारम्भ हो गया।*

गणपति प्रतिमा की वास्तविकता : गणपति की काल्पनिक प्रतिमा को देखकर हमारे देश के लोगों ने कितना सीखा, समझा या पाया है, इसका उत्तर मूर्ति-पूजक ही बता सकते हैं। हाँ! इतना अवश्य कह सकते हैं कि लोगों की गणपति की प्रतिमाओं के प्रति आस्था और श्रद्धा अत्यधिक बढ़ गई है। देखा-देखी में बिना सोचे-समझे प्रायः लोग पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं। महा-गणपति (परम पिता परमात्मा) के स्थान पर मनुष्य की बनाई मिट्टी के मूर्तियों के समक्ष अपना शीश झुकाने में अपनी शान समझते हैं। लगता है "धर्म के स्थान पर अधर्म ने अपना डेरा जमा लिया है।" लोग दस दिन चलने वाले गणेशोत्सव के महत्त्व को भूल ही जाते हैं। गणेशोत्सव प्रारम्भ करने का यही लक्ष्य था कि लोग आपस के वैर-विरोध को भूल कर, आपसी मन-मुटाव को भूल कर, नये सिरे से पहले की तरह सम्बन्ध स्थापित कर सकें। पुरानी बातों को मन से मिटा दें और सब मत-मतान्तरों की सीमाओं को मिटा कर एक-दूसरे से मिल जाएँ, मनुष्य को मनुष्य समझकर सहायता करें ताकि हमारे देश की एकता और अखण्डता बनी रहे क्योंकि एकता से ही देश की सुख-समृद्धि-सुरक्षा बनी रहती है।

*[मूर्तिपूजा कितनी आवश्यक और कितनी अनावश्यक?- इस पर लेखक की आगामी मूर्तिपूजा नामक पुस्तक अवश्य पढ़ें।]

ओ३म् ही गणपति–गणपति ही ओ३म्

गणपति की प्रतिमा, परमात्मा के निज नाम 'ओ३म्' का ही बिगड़ा हुआ रूप माना जाता है। कुछ लोगों को सही रूप से 'ओ३म्' लिखने में कष्ट होता है अतः उन्होंने ओ३म् को ॐ प्रकार का चिह्न देकर लिखना आरम्भ किया। ईश्वर के अनन्त गुण-कर्म-स्वभावों को ध्यान में रखकर कुछ विद्वान् पण्डितों ने चतुर एवं प्रवीण चित्रकारों की सहायता से ॐ का विस्तार कर प्रचलित 'गणपति की प्रतिमा' की रचना की। ध्यानपूर्वक देखें तो आधुनिक गणपति की प्रतिमा में ईश्वर के अनेक गुण-कर्म-स्वभावों का समावेश है। **स्मरण रहे कि गणपति की मूर्ति मात्र मूर्ति है, साक्षात् ईश्वर नहीं!**

एक और बात स्मरणीय है कि मूर्ति या तस्वीर उसी वस्तु की बन सकती है जिसका आकार होता है। आकार वाली वस्तु का ही रूप, रंग प्रतिमान होता है। जड़ वस्तुएँ आकार वाली होती हैं परन्तु उनमें भी अनेक वस्तुएँ ऐसी हैं जो अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण चर्म-चक्षुओं से नहीं दिखतीं, जैसे अति-सूक्ष्म कीटाणु और वायु आदि। हमारा शरीर वास्तव में जड़ होता है, मुर्दा होता है अर्थात् मूर्ति या तस्वीर केवल मुर्दा (बेजान) वस्तु की ही हो सकती है, चेतन (आत्मा या परमात्मा) की नहीं। जड़ वस्तु की आरती, पूजा, आराधना या उपासना नहीं हो सकती।

पत्थर की मूर्ति तराश कर, उसे साकार बनाकर उसके स्थान पर चेतन परम पिता परमात्मा अर्थात् गणपति, प्रियपति, निधिपति, कवि, श्रवणस्तम, उपम, ज्येष्ठराज या प्रजापति की पूजा करना

घोर अपराध ही नहीं, परम पिता का निरादर करना है, मज़ाक उड़ाना है। भला 'गणपति' की मूर्ति की कोई कल्पना भी कर सकता है। ईश्वर की कोई प्रतिमा, तस्वीर या मूर्ति नहीं हो सकती क्योंकि वह परम पिता परमात्मा चेतन, निराकार, सर्वव्यापक एवं सर्वगुण सम्पन्न होने से अकाय है। **"न तस्य प्रतिमाऽस्ति" (यजुर्वेद: 32/3)** अर्थात् उस परमेश्वर की प्रतिमा नहीं है - यह वेद का सुभाषित है। अब आप ही बताएँ कि क्या आप वेद को नहीं मानते? क्या आप नास्तिक या पाखण्डी हैं? नहीं!

गणपति (परमेश्वर) की पूजा, आराधना करने से पूर्व इस बात को अच्छी तरह से समझ लेना चाहिये कि परमात्मा कोई मनुष्य या अन्य प्राणियों की भाँति चलता-फिरता, खाता-पीता, जड़ पदार्थ या एकदेशी वस्तु नहीं है जिसकी तस्वीर या मूर्ति बनाई जा सकती है। उसको आज तक न कभी किसी ने देखा है और न कभी कोई देख सकता है। परमात्मा एक सर्वव्यापी चेतन सत्ता है जिसका कोई आकार, विकार या स्वरूप इत्यादि नहीं होता और न ही हो सकता। है। जिस वस्तु का आकार होता है उसका विकार भी होता है और जिसका विकार होता है उसका अन्त भी अवश्य होता है। आत्मा और परमात्मा दोनों ही चेतन वस्तुएँ हैं, निराकार वस्तुएँ हैं अतः उनका विकार और अन्त नहीं होता। दोनों ही अजर, अमर और नित्य हैं। ईश्वर और आत्मा में एक और विशेषता है कि दोनों, स्थान नहीं घेरतीं। स्मरण रखने योग्य बात है कि स्थूल जड़[(2)] वस्तुओं का ही आकार-विकार होता है परन्तु उन में भी जो अत्यन्त सूक्ष्म वस्तुएँ होती हैं जैसे अग्नि, वायु, आकाश, इन का भी आकार नहीं होता।

[(2) जड़ प्रकृति से बनी सभी जड़ वस्तुएँ चाहे वे सूक्ष्म हों या स्थूल, वे सब वस्तुएँ स्थान घेरती हैं। प्रकृति अत्यधिक सूक्ष्म होने के कारण नहीं दिखती अतः आकार रहित होती है परन्तु उससे बनी सृष्टि में भी अनेक वस्तुएँ ऐसी भी होती हैं जो जड़ होते हुए भी सूक्ष्म होती हैं जैसे वायु और आकाश इत्यादि। यहाँ

एक बात ध्यान में धरने योग्य है कि जितनी भी वस्तुएँ प्रकृति से बनी हैं वे स्थान घेरती हैं और प्रलयावस्था में अपने कारण (प्रकृति) में समा जाती हैं। वैदिक सिद्धान्त की भाँति विज्ञान भी यही मानता है कि जिन-जिन वस्तुओं का अस्तित्व होता है वे कभी भी नष्ट नहीं होतीं मात्र उसके स्वरूप में परिवर्तन हो जाता है। और जिन चीज़ों का जन्म होता है अथवा या अस्तित्व में आती हैं उनकी मृत्यु या अन्त निश्चित होता है परन्तु विनाश या ख़ात्मा नहीं होता क्योंकि वे अपना स्वरूप बदलकर अपने मूल-कारण में मिल जाती हैं। स्मरण रहे कि कारण का कारण नहीं होता। जैसे ईश्वर, जीव और प्रकृति का कारण नहीं होता क्योंकि ये तीनों अनादि होने से नित्य हैं।]

[प्रभु से भी पाखण्ड? मनुष्य अत्यन्त स्वार्थी प्रकार का प्राणी है। वह कोई भी कार्य बिना स्वार्थ के नहीं करता। ईश्वर की भी स्तुति-प्रार्थना-उपासना करता है तो उसके पीछे भी दु:खों से छूटने तथा अपनी मनो-कामनाएँ पूर्ण करने का स्वार्थ होता है। उसकी तीन कमज़ोरियाँ होती हैं– वित्तैषणा, पुत्रैषणा और लोकैषणा। यदि मनुष्य इन तीनों ऐषणाओं से लिप्त नहीं होता है तो वह वास्तव में 'मनुष्य' बनता है और देवताओं की श्रेणी में शुमार होता है। स्वार्थी मनुष्य की सबसे बड़ी पहचान है - लोकैषणा। 'अवसरवाद' इन लोगों का धर्म होता है। मित्र बनने की दुहाई देना, धर्म का मुखौटा पहनकर राजनीति करना इनका पेशा बन जाता है। पाखण्डी लोग धार्मिक बनने का ढ़ोंग करते हैं, माथे पर टीका लगाना, हाथ पर मौली बाँधना, पूजा-पाठ करने का नाटक करना, सन्ध्या-हवन करने का ढ़ोंग करना, मन्दिरों में प्रतिमाओं के आगे माथा टेकना, घंटे-घंटियाँ बजाना, धूप-अगरबत्ती-दीया या ज्योत जलाना, माता की चौकी या जागरण करना-कराना, तीर्थ-स्थलों पर जाकर डुबकियाँ लगाना इत्यादि लोग धार्मिक नहीं, अपितु मात्र पाखण्डी

होते हैं। 'गणपति' मनुष्य के हृदय में सदैव साक्षी बनकर विद्यमान है।]

ईश्वर सर्वव्यापक है अतः उसका आकार नहीं हो सकता एवं उसकी मूर्ति, प्रतिमा या तस्वीर के होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। रही बात निराकार आत्मा (जीव) की तो वह एकदेशी होने से परमात्मा की कृपा से अपने पूर्व कर्मों के आधार पर शरीर धारण करता है औरं अपनी उन्नति के लिये नये-नंये कर्म करता है। जिन-जिन जीवात्माओं को भोग भोगने के लिये शरीर प्राप्त होता है, हमें मात्र उनका जड़ शरीर ही दिखता है, आत्मा निराकार होने से अदृश्य रहता है।

रास्तों तथा दुकानों में जो 'गणपति' की मूर्तियाँ बिकती हैं उनको ज़रा नज़दीक से हाथ में उठाकर ध्यान से देखें। क्या लगता है कि ईश्वर आपके हाथों में है? हाथी का मुँह और धड़ मनुष्य के शरीर जैसा (चार हाथों वाला?), हाथी के दाँत खाने के और और दिखाने के और ही होते हैं। इस गणपति की कहानी तो सब ने सुनी ही होगी कि गणेश शिव-पार्वती की सन्तान है जिसको उत्पन्न किया पार्वती जी ने और उसका पता स्वयं त्रिलोकीनाथ शिव को भी नहीं पड़ा। गणपति की ऐसी मनघड़त अनेक कहानियाँ पुराणों में लिखी हैं जिनको पढ़कर पढ़ने वाले का मस्तिष्क तो घूमता ही है परन्तु फिर भी उनको सत्य मानकर विश्वास करते हैं। इन पौराणिक कहानियों का आपस में कहीं भी ताल-मेल नहीं है, कौन सी कथा सही है और कौन सी ग़लत, किसी को मालूम नहीं है! कथाएँ और कहानियाँ तो केवल दिल बहलाने या किसी को समझाने के लिये ही होती हैं। कुछ नहीं कह सकते, कुछ कहेंगे तो आप ही बुरे बनते हैं परन्तु जहाँ मनुष्यों की आस्था/विश्वास और जहाँ धर्म जुड़ जाता है वहाँ दिल बहलाने वाली कहानियाँ सुनाकर साधारण जनता की भावनाओं के साथ खिलवाड़ करना महा-पाप है। सत्य को कितना भी छुपाने का प्रयास करो;, सत्य सदा सत्य ही रहता है।

गणपति एक–नाम अनेक

प्रचार और स्वरूप की दृष्टि से प्रचलित 'गणेश या गणपति' के अनेक नाम हैं जैसे यक्षपति गणपति, पंचानन गणपति, गजानन गणपति, वक्रतुण्ड गणपति, लम्बोदर गणपति, एकदन्त गणपति, श्वेत गणपति, कृष्ण गणपति, विद्या गणपति, ऋद्धि गणपति, सिद्धि गणपति, शक्ति गणपति, नृत्य गणपति, बाल गणपति, तरुण गणपति, वीर गणपति, वीर विघ्नेश गणपति, प्रसन्न गणपति, हेरम्भ गणपति, पिंगल गणपति, बीज गणपति, उच्छिष्ट गणपति, हरिद्रा गणपति, भुवनेश गणपति, ध्वज गणपति, योग गणपति, मूषकवाहन गणपति, सिंहारूढ़ गणपति, अश्वारूढ़ गणपति, द्विभुज गणपति, चतुर्भुज गणपति, षड्लाभुज गणपति, अष्टभुज गणपति, पद्मासीन गणपति, नागयज्ञोपवीतधारी गणपति, उष्णीधारी गणपति, अरदि गणपति इत्यादि अनेक नामरूप प्रसिद्ध हैं। [साभार: श्री ज्येष्ठ वर्मन कृत अद्भुत पुस्तक "श्री गणेश का रहस्य"]

गणपत्य समुदाय के 16 गणपति : वास्तव में 'गणपति' एक है और उसी एक की पूजा होती है परन्तु 'गणपत्य समुदाय' के लोग गणपति पूजन के समय गणपति स्तुति में गणपति के सोलह नामों का वर्णन करते हैं। गणपति के ये सोलह नाम पुराणों में भी आते हैं। 1. सुमुख, 2. एकदन्त, 3. कपिल, 4. विघ्नराजा, 5. विनायक, 6. धूमकेतु, 7. गणाध्यक्ष, 8. फलचन्द्र, 9. गजकर्ण, 10. लम्बोदर, 11. विकट, 12. वक्रतुण्ड, 13. शूर्पणखा, 14. हेरम्भ, 15. स्कन्दपूर्वजा और 16. महा–गणपति।

विश्व प्रसिद्ध गणपति के 16 नाम : विश्व में अनेक स्थानों पर अनेक गणपति के मन्दिर स्थापित किये गये हैं जिनमें

गणपति की अनेक मूर्तियों को अलग-अलग नामों से और अलग-अलग रूप में प्रदर्शित किया गया है। मुख्य रूप से गणपति के सोलह नाम प्रसिद्ध हैं: 1) बाल गणपति, 2) तरुण गणपति, 3) भक्ति गणपति, 4) महा गणपति, 5) वीर गणपति, 6) शक्ति गणपति, 7) दुविजा गणपति, 8) उच्छिष्ट गणपति, 9) विघ्नराजा गणपति, 10) क्षीरा गणपति, 11) लक्ष्मी गणपति, 12) सिद्धि गणपति, 13) ऊर्ध्व गणपति, 14) हेरम्बा गणपति, 15) विजया गणपति और 16) निरुत्थ गणपति।

अष्टविनाशक गणपति बाप्पा मोरया : महाराष्ट्र में अष्टविनाशक गणपति के नाम से आठ स्थानों पर निम्नलिखित मन्दिर प्रसिद्ध हैं: 1. मोरगाँव में **'मयूरेश्वर'** मन्दिर 'मोरया' नाम के व्यक्ति गणपति महाराज के परम भक्त हुआ करते थे, जिनके कुल-नाम से ही 'गणपति बाप्पा मोरया' का लोकप्रिय नारा प्रसिद्ध हुआ है।) 2. तेवूर में **'चिन्तामणि'** मन्दिर (मराठा पेशवाओं के समय में उनके कुल देवता का मन्दिर)। 3. रंजनगाँव में **'महा गणपति'** मन्दिर (दस सिरों वाले गणपति की प्रतिमा)। 4. सिद्धटेक में **'सिद्धिविनायक'** मन्दिर (आठ सूँडों वाले गणपति महाराज की अद्भुत मूर्ति)। 5. लेन्यादरी गुफा में **'गिरिजात्मजा'** मन्दिर (इस गुफ़ा में गणपति की मात्र पीठ दिखाई देती है)। 6. ओझर क्षेत्र में **'विघ्नेश्वर'** मन्दिर (इस में गणपति के साथ ऋद्धि और सिद्धि भी दिखाई देती है)। 7. पाली में **'बल्लालेश्वर'** (कथा है कि 'बल्ला' नामेण बालक को गणपति ने संकट से बचाया था)। और 8. महाड़ में **'वरदा विनायक'** मन्दिर (इस मन्दिर में सन् 1892 से परम्परागत लगातार दीपक प्रज्वलित है)।

विचित्र गणपति : भारत के आन्ध्र प्रदेश के कुछ मन्दिरों में गणपति के सन्दर्भ में एक और विचित्र सी बात देखने में आती है - आन्ध्र प्रदेश के वेलूर में बाल गणेश को घुटनों पर चलते हुए दिखाया गया है और मदुराई के मन्दिर में बाल गणेश के हाथों में कृष्ण की भाँति बाँसुरी को दर्शाया गया है। सुचिन्द्रा और मदुराई में बाल गणेश को बालिका गणेश (स्त्रीलिंग) के

रूप में (गणेशिनी के नाम से) दिखाया गया है। नागापट्टिनम में पाँच सिरे वाले 'हेरामबा गणपति' को शेर की सवारी करते हुए दर्शाया गया है। गणेश के इस स्त्रीलिंङ्ग रूप को 'विनायकी' 'सुर्पकर्णा' और 'लम्बमेखला' के नामों से जाना जाता है।

पूर्व में लिख आए हैं कि अनेक पुराणों (स्कंद, पद्म, वामन, ब्रह्माण्ड, वराह, मुद्रला इत्यादि) में गणपति की भिन्न-भिन्न कथाओं का वर्णन आया है। अब कौन से पुराण की कौन सी कथा सत्य पर आधारित है, इस का पता ही नहीं चलता! इसका निर्णय आप पाठकवृन्द ही कर सकते हैं कि किस पुराण की, कौन सी कथा को ऐतिहासिक या प्रामाणिक माना जाये?

वैज्ञानिक पीढ़ी का नवीन दृष्किोण

आज विज्ञान का युग है। बच्चा-बच्चा विज्ञान पढ़ता है। विज्ञान ने हमें तर्कपूर्ण ढंग से सोचना सिखाया है। जिन कहानियों में सच्चाई होती है और जिन्हें समझने के लिये तर्क-वितर्क नहीं करना पड़ता, उन्हें लोग आसानी से स्वीकार कर लेते हैं।

शिव-पुराण अथवा ब्रह्म-वैवर्त पुराण में गणपति की उत्पत्ति की जो कहानियाँ लिखी गई हैं उन्हें तर्क न करने वाला व्यक्ति तो आसानी से स्वीकार कर लेगा किन्तु जिस व्यक्ति में थोड़ी सी भी बुद्धि होगी वह इनमें अनेक प्रकार के तर्क करेगा, तब कहानी की एक भी घटना उसकी शंका का समाधान नहीं कर पाएगी। जो बातें दृष्टि के नियमों के विरुद्ध हों तथा कभी देखी-सुनी न गई हों और न ही भविष्य में जिनके होने की संभावना हो उन्हें सामान्य व्यक्ति भी स्वीकार करने से इन्कार कर देता है।

हमें अपने धर्म को काल्पनिक नहीं, अपितु वैज्ञानिक बनाना है। यदि उसमें कथा-कहानियों का समावेश करना है तथा महापुरुषों का उदाहरण प्रस्तुत करना है तो हमें उन्हें चमत्कारों तथा अनेहोनी बातों से अलग रखना होगा। सत्य घटनाएँ और वास्तविक चरित्र मन पर जितना प्रभाव छोड़ती हैं उतना प्रभाव काल्पनिक घटनाएँ नहीं छोड़तीं।

लोग कहते हैं कि धर्म श्रद्धा की वस्तु है, तर्क की नहीं। जो व्यक्ति धर्म में तर्क तथा शंका करता है उसे नास्तिक कह दिया जाता है किन्तु ज़रा विचार करें कि अन्धविश्वास हमें क्या दे सकता है? क्या वह हमारी बुद्धि अथवा हृदय को सन्तुष्ट कर सकता है? जिस ईश्वर को हम समझ ही नहीं सकते, उसकी पूजा या उपासना कैसे करेंगे? जिस ईश्वर का निर्माण अन्धश्रद्धा या अन्धभक्ति की आधारशिला पर होता है उसका कोई अस्तित्व ही नहीं होता। अस्तित्वहीन परमात्मा की उपासना कैसे की जा सकती है?

पुराणों में गणपति की कहानी

शिवपुराण के गणपति की जगप्रसिद्ध कथा: यह शिव पुराण की सर्वविदित प्रसिद्ध कथा है। इस कहानी में कितना सत्य है अथवा कितना असत्य; इसका निर्णय हमारे विद्वान् पाठकवृन्द स्वयं कर सकते हैं। जैसा कि सभी जानते ही हैं कि शिव और पार्वती जी का निवास स्थान कैलास पर्वत पर हुआ करता था इसलिये शिवजी को कैलासवासी और कैलासपति भी कहते हैं। लोगों का ऐसा मानना है कि शंकर भगवान् तीनों लोकों अर्थात् पृथिवी लोक, अन्तरिक्ष लोक और द्यौलोक के स्वामी हैं इसलिये उनको त्रिलोकीनाथ भी कहते हैं।

एक दिन की बात है कि प्रातःकाल की वेला में योगीराज शिवजी महाराज हमेशा की तरह साधना के लिये, एकान्त में, अपने घर से कहीं दूर, कैलास पर समाधि लगाने चले गये। शक्ति की देवी माता पार्वती जी घर में अकेली थीं। उनको अपनी सहेलियों संग नहाने की सूझी।

माता जी ने अपनी कुछ सहेलियों को संदेशा भेजकर नहाने का निमन्त्रण दिया और अपने घर बुला लिया। कुछ ही समय में सभी सहेलियाँ माता पार्वती जी के यहाँ, घर के भीतर ही बहते हुए झरने में नहाने में व्यस्त हो गईं। नहाने से पूर्व, घर के अन्दर कोई बिना बताए न आ जाए, इसको ध्यान में रखकर तथा घर की देखभाल और अपनी सुरक्षा के लिये उन्होंने एक विचित्र बात सोची। उन्होंने अपने शरीर पर लगे उबटन से एक सुडौल हृष्ट-पुष्ट छोटी आयु के बालक का पुतला बनाया।

उसके पश्चात् पार्वती जी ने अपनी दैवी शक्ति से उस निर्जीव पुतले में प्राण प्रतिष्ठित किये और उस पिण्ड में जान आ गई और वह जीता-जागता बालक के रूप में सामने आया और माता पार्वती को प्रणाम किया और कहा "माता जी आज्ञा दीजिये"। माता पार्वती ने उसका नाम "गणेश" रखा। उसे घर के बाहर खड़े होकर पहरेदारी के लिये नियुक्त किया और आदेश दिया कि "जब तक मैं और मेरी सहेलियाँ अन्दर नहा नहीं लेतीं तब तक तुम किसी को भी घर के भीतर आने न देना।" माता जी की आज्ञा सर-आँखों पर रखकर वह छोटा सा बालक घर के मुख्य द्वार पर सजग होकर पहरा देने लगा। वहाँ माताजी अन्दर अपनी सहेलियों के संग नहाने में व्यस्त हो गईं।

समय बीतता गया और शिव-शंकर महाराज जी के घर वापसी का समय हो गया। जब वे लौटे तो उन्होंने पार्वती जी द्वारा प्राण-प्रतिष्ठित उस बालक को अपने ही घर के बाहर पहरा देते हुए देखा। जैसे ही वे घर में प्रवेश करने लगे तो उस बालक ने विनम्रता से रोका और कहा "मैं पार्वती पुत्र गणेश हूँ और माता जी भीतर नहा रही हैं और उनकी आज्ञानुसार जब तक वे नहा नहीं लेतीं तब तक कोई भी भीतर प्रवेश नहीं कर सकता अतः मैं किसी को भी अन्दर जाने नहीं दूँगा। आप कुछ देर के लिये यहीं प्रतीक्षा करें"। शंकर जी ने कहा "मैं इस घर का मालिक हूँ और पार्वती मेरी पत्नी है अतः तुम मेरे भी पुत्र हुए और मैं तुम को आज्ञा देता हूँ कि मेरे मार्ग से हट जाओ और मुझे भीतर जाने दो।" बाल गणेश ने पिताश्री को प्रणाम किया और कहा, "पिताश्री मैं अपनी माताजी की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ। मैं माता जी की आज्ञावश विवश हूँ। आप कुछ देर के लिये प्रतीक्षा करें"। यह सुनकर शंकर जी के अहंकार को ठेस पहुँची तथा आपस में वाद-विवाद बढ़ता गया और यहाँ तक कि अब भोले शंकर बाबा से रहा नहीं गया। उनको क्रोध आने लगा। परन्तु बालक गणेश टस से मस नहीं हुआ और अपने पिता

भोलेनाथ को बार-बार भीतर जाने से रोकता रहा। शंकर जी तिलमिला उठे और अपने आपे से बाहर हो गए। उन्होंने अपना धैर्य खो दिया और बाल गणेश से झगड़ा मोल लिया जो एक घमासान युद्ध के रूप में परिवर्तित हो गया।

शंकर भगवान जो सारी सृष्टि को एक ही झटके में हिला देते हैं आज स्वयं हिलते नज़र आने लगे। वे जिस बालक गणेश से लड़ रहे थे - वह कोई ऐसा-वैसा नहीं था, आख़िर वह भी पार्वती पुत्र गणेश था। खूब डटकर मुकाबला करता रहा। शिवशंकर जी अचम्भे में पड़ गये कि इतना शक्तिशाली बालक मुझ से भी नहीं डरता। भोलेनाथ ने अपनी सेना को बुला लिया। अब तो घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। शिवपुराण में लिखा है कि उस बालक की लड़ाई शिवजी के साथ **ब्रह्म सहस्र वर्षों** तक चलती रही और अन्त में शिवशंकर की सेना परास्त हो गई। शंकर जी अचम्भे में पड़ गये और सोचने लगे - क्या करें? शिवजी ने विष्णु एवं उनकी समस्त सेना को भी बुला भेजा परन्तु वे मिलकर भी एक छोटे से बालक के साथ लड़ नहीं पाये और हार गये। अन्त में विष्णु और महेश, ब्रह्मा के पास उनकी सहायता माँगने गये। ब्रह्मा जी ने भी साथ दिया। अब तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों की सेना एक ओर और दूसरी ओर एक छोटा सा बालक—गणेश। भयंकर युद्ध हुआ परन्तु हारना तो इन तीनों की सेना को ही था क्योंकि वह बालक पार्वती की शक्ति का प्रतीक था। लाखों करोड़ों की संख्या में सेना हताहत हुई परन्तु बालक द्वार पर ही टिके रहे। इस भयंकर युद्ध में **ब्रह्म सहस्र वर्ष** बीत गये। युद्ध के दौरान विष्णु ने देखा कि बालक गणेश का मुँह दूसरी ओर है अतः उन्होंने शिवजी को, उस अवसर पर गणेश को पीछे से धोखे से मारने की योजना बताई और बालक पर प्रहार करने.की सलाह दी। शिव शंकर ने भी मौका हाथ से जाने नहीं दिया। अपने त्रिशूल से, छल-कपट तथा धोखे से उस नन्हे बालक का सर कलम कर दिया। बाल गणेश

वहीं ढेर हो गया और उसका सिर धड़ से अलग होकर कहीं दूर जा गिरा। पूरा वातावरण शान्त हो गया। सब ने चैन की सांस ली। इसी के साथ माताजी का स्नान भी समाप्त हुआ। जब बाहर आईं तो ब्रह्मा, विष्णु और शंकर जी तथा इतनी बड़ी संख्या में सेना को घर के बाहर देखकर कुछ परेशान हो गईं और अपने बालक (पुत्र) के बारे में पूछने लगीं। शिवजी ने पूरी घटना सुनाई और कहा कि उस बालक को मैंने समाप्त कर दिया है।

गणपति की असली कहानी तो अब प्रारम्भ होती है। पार्वती ने जब अपने पुत्र को मरा हुआ देखा तो वे फूट-फूट कर रोने-बिलखने लगीं और शिवजी से आग्रह किया कि मेरे बच्चे को कैसे भी जिला (जीवित कर) दो। आप कुछ भी करो, मुझे मेरा बेटा वापस चाहिये, नहीं तो मैं भी अपने प्राण त्याग दूँगी। शिवजी पार्वती को समझाने में असफल रहे। सब जानते हैं कि स्त्री-हठ के सामने भला किसी की चली है जो शिवजी की चलती? विवश होकर शिवजी ने अपनी सेना को बालक के कटे सिर को ढूँढ़ने के लिये कहा। काफ़ी देर के गुज़रने पर भी कटा हुआ सिर नहीं मिला। शिवजी ने फिर सेना को चारों दिशाओं में ही नहीं तीनों लोकों में दोबारा भेजा और कहा कि बिना ढूँढ़े वापस नहीं लौटना। वही उत्तर मिला कि वह सर कहीं नहीं मिल रहा है। पार्वती का रोना-धोना जारी था। रात्रि हो चुकी थी। विवश होकर शिवजी ने सेना को आदेश दिया - कल सवेरा होने से पूर्व मुझे कटा हुआ सिर चाहिये, यदि वही सिर नहीं मिले तो सूर्य निकलने से पूर्व जो सबसे पहले नवजात शिशु दिखे, उसका सिर काटकर मेरे पास लाना, ख़ाली हाथ नहीं आना। और यही हुआ। प्रातःकाल की अमृत वेला में एक हथिनी ने बच्चे को जन्म दिया और सेना के कुछ सिपाहियों ने यह देख लिया। हाथी के नवजात शिशु को उसी क्षण मार दिया गया और उसका सिर अलग करके शिवजी के समक्ष लाया गया। पार्वती को यह सब अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा "मुझे वही बच्चा

चाहिये जिसको मैंने बनाया था। हाथी के सिर वाला और मनुष्य धड़ वाला बालक नहीं। ऐसे बच्चे का तो सब देवी-देवता एवं अन्य लोग भी मज़ाक उड़ाएँगे"। बहुत समझाने-बुझाने के पश्चात् यही निर्णय हुआ कि ऐसा नहीं होगा। शिवजी ने उस हाथी के बच्चे के सिर को बेजान बालक के धड़ से जोड़ दिया और उसमें प्राण प्रतिष्ठित किये और बालक जीवित हो गया। पार्वती और सभी उपस्थित देवी-देवताओं ने जब यह विचित्र रूप वाला बालक देखा तो किसी को भी नहीं भाया। भला ऐसा है पार्वती पुत्र! इस पर शिवजी महाराज ने सब को समझाते हुए घोषणा की कि "हमारा यह बेटा 'गणपति' के नाम से प्रसिद्ध होगा और अभी से सब देवी-देवताओं की पूजा से पहले हमारे पुत्र "श्री गणेश" की ही पूजा होगी। इस आश्वासन के बाद पार्वती जी भी संतुष्ट और शान्त हुईं।

तब से आज तक यह मान्यता रही है कि प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ करने से पहले गणपति की ही पूजा की जाती है अर्थात् श्री गणेश किया जाता है। यही कहानी है "श्री गाणेश" की। क्या आप जानते हैं कि हमारे 'गणनायक', 'अष्टविनायक', 'लम्बोदर', सूँडवाले गणपति महाराज की सवारी किस पर बैठकर करते हैं? जी हाँ! उनकी सवारी 'मूषक' है, जिसकी विस्तृत चर्चा आगे करेंगे।

ब्रह्म-वैवर्त पुराण के गणपति की अलग कहानी : ब्रह्म वैवर्त पुराण में 'गणपति' की उत्पत्ति अलग ढंग से वर्णित की गई है। कहानी इस प्रकार है : शिवजी महाराज ने पुत्र प्राप्ति हेतु माता पार्वती को एक वर्ष के लिये पुण्याक-व्रत रखने का आग्रह किया जिससे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं और उनके आशीर्वाद से पुत्र प्राप्ति सम्भव हो सकेगी। पार्वती ने आज्ञा का पालन किया और एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस हर्षोल्लास के शुभावसर पर सभी देवी-देवताओं को निमन्त्रण भेजा गया। सब देवी-देवता एकत्रित हुए। वहाँ सूर्यपुत्र भगवान् शनि भी उपस्थित थे परन्तु

उन्होंने उस नवजात शिशु को देखने से इन्कार कर दिया। पार्वती को बहुत बुरा लगा और कारण पूछने पर शनि ने उत्तर दिया 'मेरी दृष्टि पड़ने से बच्चे को हानि पहुँच सकती है'। पार्वती ने नहीं माना और आग्रह पर जब शनि की दृष्टि बच्चे पर पड़ी तो उस बच्चे का सर धड़ से कट कर अलग हो गया। यह देखकर उपस्थित सब देवी-देवता आश्चर्य चकित हो गए। भगवान् विष्णु ने सतर्कता बरती और शीघ्रता से पुष्पभद्रा नदी के तट की ओर प्रस्थान किया, जहाँ से वे एक नवजात हाथी के बच्चे का सिर काटकर शिवजी के घर ले आए। उन्होंने पार्वती के बच्चे के सर के स्थान पर वह हाथी का सर जोड़ दिया। इस प्रकार प्रचलित हाथी सर वाले गणपति की उत्पत्ति हुई।

नोटः हमारे अनेक पुराणों में शिव, पार्वती तथा उनके पुत्र गणपति की अलग-अलग कथाएँ हैं जो एक-दूसरे से मेल नहीं खातीं। सत्य केवल एक होता है, अनेक नहीं। पाठकवृन्द अवश्य जानना चाहेंगे कि वास्तव में कौन सी कहानी सच्ची घटना पर आधारित है या मात्र सब दन्तकथाएँ हैं? यदि ऐसा है तो 'गणपति' क्या है? क्या वास्तव में गणपति का अस्तित्व है या मात्र कल्पना है? इस विषय में लोग अनेक प्रकार के प्रश्न पूछते रहते हैं। अतः हम अपने पाठकवृन्द को स्पष्ट करना चाहते हैंः कलाकार किसी भी देश का क्यों न हो, हम उसका सम्मान करते हैं।

विशेष : किसी भी कलाकार की सभ्य मूर्ति/कृति का विरोध करना नहीं चाहिये। उनकी कद्र करनी चाहिये। मूर्तियाँ प्रेरणा देने के लिये होती हैं। मूर्तियों से बहुत कुछ सीखा जा सकता है। हम बार-बार यही स्पष्ट करना चाहते हैं कि हम किसी भी मत, मतान्तर, मज़हब, पन्थ, सम्प्रदाय इत्यादि का निरादार करना अपनी सभ्यता के विरुद्ध मानते हैं और न ही किसी मूर्तिपूजक के हृदय को ठेस पहुँचाना चाहते हैं। हम तो मनुष्य मात्र का हित चाहते हैं। हम कलाकारों, मूर्तिकारों,

चित्रकारों, शिल्पकारों के अथक परिश्रम और भावों का हृदय से सम्मान करते हैं जिन्होंने आज तक हमारी संस्कृति, सभ्यता और कला को जीवित रखा है। कोई हमारी प्राचीन संस्कृति, सभ्यता और कला को नष्ट करना चाहे तो उसका विरोध करना ही चाहिये। अश्लील एवं असभ्य प्रकार की मूर्तियों, तस्वीरों तथा शिल्पकारी का प्रदर्शन मानवता के लिये कलंक होता है अतः उनका विरोध होना चाहिये। जो मानव धर्म को दूषित करे, ऐसे कलाकारों की कला का बहिष्कार करना चाहिये। धर्म जोड़ने का कार्य करता है, तोड़ने का नहीं! जिस कला से किसी को दुःख या ठेस पहुँचे, ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये।

हम विरोधी हैं तो केवल पाखण्डियों के पाखण्डों के – जो समाज में अन्धविश्वास और अन्धश्रद्धा फैलाकर हमारी सत्य सनातन वैदिक संस्कृति तथा सभ्यता को सदा के लिये समाप्त करना चाहते हैं। मूर्तिपूजा का लाभ उठाकर हमारे देश पर न जाने कितनी बार आक्रमण हुए हैं और हम मूर्ति को भगवान मानकर मुँह ताकते रह जाते हैं। मूर्ति वाले भगवान तो मूर्ति से बाहर नहीं आ सकते और न ही आक्रमण का कभी जवाब दे सकते हैं क्योंकि मूर्ति जड़ पदार्थ है और चेतना रहित होने से कुछ नहीं कर सकती। विद्वान् लोगों का मानना है कि जड़ की पूजा करने से जड़ता ही प्राप्त होती है और कुछ भी प्राप्त नहीं होता। दूसरी ओर यदि चेतन परमात्मा की पूजा-आराधना करने से मनुष्य में आत्मिक चेतना जागृत होती है। आप-हम (जीवात्माएं) चेतन हैं अतः चेतना से काम लें, सावधानी और जागरूकता से काम लें। परम पिता परमात्मा सर्वव्यापक होने से सब के घट-घट में विराजमान है। आत्मा एकदेशी होने से इसी शरीर के भीतर रहता है अतः हमारे लिये परमात्मा से मिलने (योग) का सर्वोत्तम स्थान हमारा अपना हृदय ही है।

ठीक है! मूर्ति का अपना महत्त्व है। मूर्ति एक प्रतीक है, किसी के चित्र को दर्शाती है, चित्रकारी बिना कहे ही सब कुछ

प्रदर्शित करती है, शिक्षा प्रदान करती है और कलाकार की भावनाओं को प्रदर्शित करने का एक साधन है। मूर्ति न तो खा-पी सकती है न ही किसी को खिला-पिला सकती है। निर्जीव मूर्ति के साथ सजीव जैसा व्यवहार करना, उसके समक्ष बातें करना, उसके सामने खाद्य पदार्थ रखना, रुपये रखना, उसके वाहन मूषक के कान में मन की बातें कहना तथा उसकी परिक्रमा करना इत्यादि अपनी ही अज्ञानता को दर्शाना है। अन्धश्रद्धा की सब हदों को पार करना है।

'शिवपुराण' में वर्णित कथा से अनेक शंकाएँ उत्पन्न होना स्वाभाविक है जिन का उत्तर पुराणों के रचयिता भी नहीं दे सकते। 'शिवपुराण' की कहानी के अनुसार माता पार्वती के कान की मैल या शरीर की मैल से 'गणेश' की उत्पत्ति हुई - कहानी के श्रीगणेश में ही लोगों को भ्रमित किया गया है क्योंकि यह प्रकृति के नियमों के विरुद्ध होने से भोले-भाले लोगों में पाखण्ड फैलाया जा रहा है या हिन्दू जाति को कलंकित करने का षड्यन्त्र रचाया गया है। भला कान की मैल से एक बच्चे के पिण्ड का निर्माण हो सकता है? क्या शरीर की मैल से बने पिण्ड में फूँकने से उसमें प्राण प्रतिष्ठित हो सकते हैं? कान की मैल मोम की होती है। क्या गणेश जी मोम से बने थे? ऐसा सोचना अन्धविश्वास है क्योंकि ऐसा प्रकृति नियम के विरुद्ध है। विज्ञान कहता है कि स्त्री और पुरुष के संयोग तथा ईश्वर की कृपा के बिना किसी बच्चे का जन्म नहीं हो सकता। पाखण्डी लोग कहते हैं कि जब गणेश की उत्पत्ति हुई तो वह घर की रक्षा कर सकता था अर्थात् वह बालक समझदार और बलवान था। क्या पैदा होते ही वह बच्चा बड़ा हो गया? वैसे भी हमारे पुराणों में अनेक बातें नासमझी से लिखी गई हैं या जिसने भी शिवपुराण में मिलावट की है, बड़ी नासमझी से की है। बुद्धिजीवी कभी भी ऐसी अनहोनी, अवैज्ञानिक और बेतुकी बातों पर विश्वास नहीं कर सकते।

सत्य सनातन वैदिक धर्म में आस्था रखने वाले हमारे पाठकवृन्द 'शिव पुराण' की उपर्युक्त कथा में कभी विश्वास नहीं कर सकते। साधारण लोग भी निम्नलिखित अनेक प्रकार के प्रश्न पूछते हैं। यहाँ उन प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास करेंगे।

प्रश्न 1. क्या माता पार्वती जी प्रतिदिन नहाती थीं या कभी-कभी? यदि प्रतिदिन नहाती थीं तो घर की रखवाली कौन करता था और यदि कभी-कभी नहाती थीं तो वह भगवान् शिव की पत्नी कैसे हो सकती थीं क्योंकि भगवान् की पत्नी होकर कभी-कभी नहाना उचित नहीं लगता।

प्रश्न 2. क्या माताश्री, भगवान शिवशंकर के घर से बाहर जाने के बाद ही नहाती थीं? यदि हाँ तो शिवजी कहाँ जाते थे? यदि कहो कि वे ध्यान करने कहीं दूसरे स्थान पर जाते थे तो क्या उनका ध्यान घर पर नहीं लगता था? वे किसी का ध्यान करते थे? हिन्दू भाई शिव-शंकर को ही सदाशिव अर्थात् ईश्वर मानते हैं क्या ईश्वर किसी दूसरे ईश्वर का ध्यान करता है? ईश्वर एक है या अनेक?

प्रश्न 3. माता पार्वती इस से पहले भी नहायी होंगी तो उन्होंने इसी प्रकार से अपने कान की मैल से बच्चों को उत्पन्न किया था? यदि हाँ तो उनके नाम कौन से हैं और उनका वर्णन किस पुराण में है? इसी से प्रमाणित होता है कि शिव पुराण की यह कथा दन्तकथा है जिसका कोई आधार या प्रमाण नहीं होता।

प्रश्न 4. क्या माता जी के शरीर पर इतना उबटन लगा था कि एक बच्चे का पिण्ड बन सकता था? यह भी कल्पित है। मनुष्य का कान इतना छोटा और उसमें इतनी अधिक मैल होना- यह मेल नहीं खाता।

प्रश्न 5. क्या कैलास पर्वत में अनेक लोगों का आना-जाना था कि घर की देख-भाल के लिये एक पहरेदार की आवश्यकता पड़ती थी? पहरेदार की आवश्यकता तभी पड़ती है जब कोई बिना पूछे घर में घुस आता है या फिर घर के द्वार पर ताला नहीं

होता। भगवान शिव के घर पहरेदार की आवश्यकता क्योंकर पड़ी? वैसे भी भगवान कहाने वाले मनुष्य ही होते हैं, ईश्वर नहीं।

प्रश्न 6. क्या माता जी अपनी सहेलियों के संग करोड़ों वर्ष तक नहाती रहीं और किसी को भी ठंड नहीं लगी? कैलास पर्वत सदा बर्फ से ढका रहता है और वहाँ लम्बे काल तक नहाया नहीं जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस व्यक्ति ने 'शिव पुराण' लिखा होगा वह अवश्य ही किसी रेगिस्तान का निवासी रहा होगा क्योंकि न तो उसे कैलास पर्वत के बारे में कोई ज्ञान रहा होगा, न ही वह बर्फ़ीले स्थान के विषय में कुछ जानता होगा। नहीं तो वह इस प्रकार का वर्णन नहीं करता, जैसा मैदानी इलाक़ों का होता है। लगता है 'शिव पुराण' की कहानी काल्पनिक है, या जिसने भी लिखी है, हमारी सनातन संस्कृति का मज़ाक उड़ाने के लिये ही लिखी है वरना 'शिव पुराण' में इतने सारे गपोड़े नहीं होते।

प्रश्न 7. घर के बाहर अनेकों वर्षों तक घमासान युद्ध चलता रहा और उसकी आवाज माता जी को सुनाई नहीं दी? या उनके कानों में इतनी मैल जम जाती थी कि उसे युद्ध की आवाज़ बिल्कुल सुनाई नहीं दी? लगता है माता पार्वती ने पूरा जीवन नहाने में ही बिताया होगा।

प्रश्न 8. क्या गणेश जी बिना खाए-पीये इतने लम्बे समय तक लड़ते रहे और बच्चे के बच्चे ही रहे? (बालक गणेश इतने वर्षों तक लड़ता रहा और उसकी आयु उतनी ही रही); कैसे सम्भव है?

प्रश्न 9. क्या त्रिलोकी नाथ शंकर भगवान को मालूम ही नहीं पड़ा कि वह उनका (पार्वती) पुत्र है? यदि मालूम नहीं पड़ा तो वे कैसे 'त्रिलोकी नाथ'-तीनों लोकों के स्वामी-कहाते हैं?

प्रश्न 10. समस्त संसार का संहार करने वाला 'भगवान शिव-शंकर' एक नन्हे बालक 'गणेश' से युद्ध में परास्त हो गया

और अपनी जान बचाने के लिये उसे 'ब्रह्मा' और 'विष्णु' तथा उनकी सेना की सहायता माँगनी पड़ी? (सब का संहार करने वाला 'शिव' जिसका दूसरा नाम 'महेश' भी है, वह एक बालक से लड़ नहीं पाया! कैसी अनहोनी बात है?)

प्रश्न 11. क्या गणेश इतना शक्तिशाली था कि उसके समक्ष 'ब्रह्मा', 'विष्णु', और स्वयं 'महेश' (शिवजी) तीनों तथा उनकी समस्त सेना भी मुकाबला नहीं कर पाईं? (यह तीनों के लिये अपमानजनक बात लगती है जो असम्भव है।)

प्रश्न 12. जिस शंकर भगवान् के क्रोधित होने पर पूरा ब्रह्माण्ड थर-थर काँपता है, वह ब्रह्मा और विष्णु के कहने पर छल-कपट से गणेश को मृत्यु के घाट उतारता है, ऐसा अनुचित कर्म एक योगी के लिये कहाँ तक उचित है? क्या भगवान् भी किसी बेक़सूर प्राणी की धोखे से हत्या करता है? यदि हत्या करता है तो वह भगवान कहाने योग्य नहीं हो सकता! है न?

प्रश्न 13. पार्वती की माँग पर शिवजी ने अपनी सेनाओं को गणेश जी के कटे सिर को ढूँढ़ने का आदेश दिया परन्तु कटा सिर नहीं मिला। (क्या तीनों लोकों के नाथ 'त्रिलोकी नाथ' को भी मालूम नहीं पड़ा कि सिर कट कर कहाँ गिरा था?)

प्रश्न 14. माता पार्वती की ज़िद्द पर शिवजी ने गणेश को फिर से जीवित किया और चूँकि बालक गणेश का कटा हुआ सिर बहुत ढूँढ़ने पर भी नहीं मिला और उसके स्थान पर एक हथिनी के नवजात शिशु का सिर काटकर लगाया गया और वह बालक 'गणपति' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। यहाँ अनेक शंकाएँ उत्पन होती हैं: 1. एक बालक के कटे धड़ पर हथिनी के नवजात शिशु का सिर किसने लगाया अर्थात् वह शल्यक्रिया किस वैद्य या डॉक्टर ने की थी? 2. आप ही बताएँ कि क्या किसी हाथी का सिर एक मनुष्य के बच्चे की गर्दन पर लगाया जा सकता है? नहीं! 3. मान लो कि वह सम्भव हो भी गया तो हाथी के सूंड वाले सिर का मुँह ऊपर आकाश की ओर होना

चाहिये, परन्तु जब हम लोक में गणपति की तस्वीर को देखते हैं तो उसमें वह सामने की ओर है जो एक हास्यास्पद अनहोनी कथा है।

प्रश्न 15. मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियों का केन्द्र मस्तिष्क होता है। हाथी के मस्तिष्क में पशुओं की ज्ञानेन्द्रियाँ होंगी तो गणपति का स्वभाव कैसा होना चाहिये? सिर पशु का और धड़ मनुष्य का हो, ऐसा प्राणी न कभी हुआ है, और न ही कभी हो सकता है। प्रकृति नियम के विरुद्ध होने से "गणपति की प्रतिमा" मात्र काल्पनिक है जिससे अनेक बातें सीखी जा सकती हैं। इससे यही प्रमाणित होता है कि पुराणों में अनेक घटनायें मिश्रित हैं।

प्रश्न 16. शाकाहारी पशु मात्र घास, हरी सब्जियाँ अथवा फल-फूल ही खाता है परन्तु हमारे गणपति महाराज मात्र मोदक (लड्डू) ही क्यों खाना पसन्द करते हैं? (इसका सरल समाधान है कि जो मिष्टान्न पण्डितों को प्रिय लगता है, गणपति को भी उसी का भोग करने-कराने का ढोंग करते हैं। इसी भोग के बहाने पण्डितों का पेट भरता है। क्यों न हो, पाषाण (मिट्टी की) होने के कारण, प्रतिमा किसी भी पदार्थ का भोग नहीं लगा सकती है। खाना-पीना जीवितों के लिये सम्भव है, जड़ मूर्तियों के लिये नहीं।

प्रश्न 17. कोई भी बुद्धिजीवी मनुष्य रोज़ मर्रा की सवारी के लिये तेज़ रफ़्तार वाला वाहन रखना चाहता है परन्तु श्री गणेश जी ने अपना वाहन एक मूषक (चूहे) को चुना। भला एक छोटा सा प्राणी - चूहा इतनी भारी काया वाले श्री गणेश जी को कैसे उठा कर भाग सकता है? वास्तव में मूषक किसी भी सवारी के काम नहीं आता।

प्रश्न 18. थोड़ा सा विचारिये कि क्या बैल (शिवजी की सवारी), शेर (माता पार्वती की सवारी) और चूहा (गणेश जी की सवारी) - तीनों एक ही घर में एक साथ रह सकते हैं? क्या हमारे पूज्यनीय देवी-देवताओं को और कोई सवारी नहीं मिली?

प्रश्न 19. कैलास पर्वत पर इतनी कड़ाके की सर्दी में क्या ऐसी तीनों सवारियाँ रह सकती हैं? उनकी खुराक क्या होगी तथा कहाँ से आती होगी?

प्रश्न 20. पहरे के लिये गणेश को बनाने की क्या आवश्यकता थी, घर में शिवजी का नन्दी बैल और माता जी का शेर तो पहले से ही विद्यमान था। है ना?

प्रश्न 21. हाथी का शरीर काला होता है परन्तु गणपति का मुँह और शरीर के सब अंग गोरे रंग के होते हैं, भला यह कैसा रहस्य है?

ऐसे अनेक प्रश्न हो सकते हैं जिनका उत्तर सभी जानना चाहेंगे। संक्षेप में गणपति जी की काल्पनिक प्रतिमा से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण रहस्यों की जानकारी प्रस्तुत करते हैं।

गणपति-प्रतिमा का रहस्य
(वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप)

गणपति की उपासना के लिये जिस प्रसिद्ध श्लोक का उच्चारण किया जाता है वह गणपति के बारे में न होकर निराकार परमात्मा का ही वर्णन करता है। यहाँ उसी श्लोक की वैदिक व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है।

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्य कोटि समप्रभ। निर्विघ्नं कुरू मे देव सर्व कार्येषु सर्वदा।। विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय, लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय। नागनाथाय श्रुति यज्ञ विभूषिताय, गौरी सुताय गणनाथ नमो नमस्ते।।

वक्रतुण्ड : (टेढ़े-मेढ़े मुँह वाला) अग्नि की लपटें एक प्रकार की नहीं, अपितु टेढ़ी-मेढ़ी ही होती हैं अर्थात् ईश्वर सर्वव्यापक होने से सब दिशाओं में विद्यमान है। ईश्वर निराकार है। यहाँ भौतिक अग्नि प्रतीक मात्र है जिसकी लपटें सदा ऊपर की ओर उठती हैं जो हमें प्रगति के मार्ग पर ऊपर (उन्नति) की

ओर बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करती हैं। ईश्वर सदैव सब जीवों का कल्याण चाहता है इसलिये सब को उन्नति करने की प्रेरणा प्रदान करता रहता है।

महाकाय : (महान काया वाला, भारी भरकम शरीर वाला) विशालता एवं प्रभावशाली होने का प्रतीक। प्रत्युत इतना महान है कि हम उसकी कल्पना नहीं कर सकते।

सूर्य कोटि समप्रभ : करोड़ों सूर्यों की रोशनी के समान: जो परमेश्वर सूर्य जैसे अनगिनत सूर्यों को रचकर धारण किये हुए है वह परमात्मा कितना प्रभावशाली होगा – उसकी कल्पना करना हमारी कल्पना से बाहर है अर्थात् वह सर्वोपरि है।

निर्विघ्नम् : जो महानुभाव ईश्वर की सच्ची पूजा (आज्ञा का पालन) करता है परमात्मा उसके समस्त दु:ख (विघ्न) दूर करते हैं इसलिये गणपति (परमेश्वर) को 'विघ्नहर्ता' कहते हैं।

वरदा : वर देने वाला अर्थात् भक्तों की मुरादों को पूर्ण करने वाला, वह और कोई नहीं, गणपति भगवान् हैं।

सुरप्रिय : सुर का अर्थ होता है 'देवता' अर्थात् श्रेष्ठजन, जो मनुष्यों में उत्तम होते हैं। ऐसे श्रेष्ठजन ही परमात्मा की सच्ची भक्ति करते हैं। सुर का दूसरा अर्थ 'स्वर' अर्थात् संगीत भी लगाया जा सकता है। संगीत परमात्मा के निकट पहुँचाता है इसीलिये भजनों के माध्यम से लोग परमात्मा तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। इसीलिये ईश्वर को 'सुरप्रिय' कहा गया है। संगीत का अर्थ होता है संगति कराने वाला अर्थात् जिसके माध्यम से हम ईश्वर से जुड़ते हैं। भक्तजन संगीत के माध्यम से परमात्मा की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करते हैं। संगीत द्वारा परमात्मा में मन शीघ्रातिशीघ्र लगता है इसलिये गणपति प्रतिमा में गणपति के एक हाथ में शंख (संगीत का प्रतीक) दर्शाया जाता है।

लम्बोदर : ईश्वर के भण्डार भरपूर होते हैं, कभी खाली नहीं होते। यह प्रकृति ही उसका पेट है। प्रकृति में कभी वस्तुओं का अभाव नहीं होता, इसी को दर्शाने के लिये मूर्तिकार ने

'गणपति' जी के उदर को लम्बा दिखाया है। सुख, समृद्धि तथा विशालता का प्रतीक।

बड़े-बड़े कान : दूर एवं नजदीक की बातों को सुनने की क्षमता का प्रतीक।

छोटी-छोटी आँखें : ईश्वर की आँखों से कोई बच नहीं सकता। दूरदर्शिता का प्रतीक। कैमेरा की आँख छोटी होती है पर उसी छोटी आँख द्वारा दूर तथा पास के चित्र खींचे जाते हैं।

लम्बी सूँड : (नाक) हाथी ही एकमात्र ऐसा प्राणी है जिसकी नाक (सूँड) सब से लम्बी होती है। यह स्वाभिमान तथा आन, मान और शान की पहचान मानी जाती है। राजा के सर्वहितकारी कार्यों से ही राष्ट्र का स्वाभिमान एवं सम्मान बढ़ता है।

बाएँ गाल पर काला तिल : सौन्दर्य का प्रतीक। तिल चेहरे के सौन्दर्य को चार चाँद लगा देता है।

एक टूटा दाँत : पराक्रम, देशद्रोहियों का दमन करना तथा निडरता का प्रतीक। यह प्रेरणादायक प्रतीक है कि शत्रु कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, लड़ाई के मैदान से योद्धा को कभी भागना नहीं चाहिये, चाहे उसमें शरीर का कोई अंग (दाँत) भी क्यों न खोना पड़े।

चार हाथ : चारों दिशाओं में राज्य का फैलाव तथा शक्ति का प्रतीक। परमात्मा सब दिशाओं में विद्यमान है अर्थात् वह सर्वव्यापक है।

एक हाथ में मोदक : (लड्डू) मिठाई खुशहाली का प्रतीक है अर्थात् राष्ट्रपति को चाहिये कि वह अपनी जनता को भर-पेट रोटी, कपड़ा और मकान मुहैया कराता रहे। जनता को भी योग्य है कि वह राष्ट्र-नियमों का पालन करे और देश की उन्नति में नियमित रूप से अपना योगदान (आय-कर) प्रदान करती रहे।

दूसरे हाथ में रस्सी : राष्ट्र की न्याय व्यवस्था में किसी

प्रकार की ढील नहीं होनी चाहिये। देश द्रोही और अपराधियों को कड़ी सज़ा की व्यवस्था होनी चाहिये। रस्सी उसी का प्रतीक है कि देश के ग़द्दारों को बाँध कर रखना चाहिये और सज़ा देनी चाहिये।

तीसरे हाथ में 'ओ३म्' ध्वज : कहते हैं जैसा राजा वैसी प्रजा अर्थात् यदि राजा धर्मनिष्ठ होगा तो उसकी प्रजा भी धर्मात्मा होती है। धर्मात्मा होने के लिये धर्म का पालन करना परमावश्यक है अतः राजा और प्रजा दोनों को चाहिये कि वे ईश्वर के बताये मार्ग पर चलें। ईश्वर का निज नाम 'ओ३म्' है। 'ओ३म्' ही गणपति है और गणपति ही 'ओ३म्' है। पहले राजा को चाहिये कि वह धर्म का पालन करे। राजनीति में धर्म का आगमन होगा तो वह राष्ट्र दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की करता है और इसके विपरीत यदि धर्म के क्षेत्र में राजनीति प्रवेश कर जाती है तो देश में उन्नति होते हुए भी देश में अशान्ति और असुरक्षा बनी रहती है।

चौथे हाथ में शङ्ख (सुरप्रियाय) : ईश्वर अनन्त सुरों वाला है, सुरों का स्वामी है। ईश्वर की भक्ति (आज्ञा-पालन) करना ही उसकी पूजा है। शङ्ख संगीत का एक प्राचीन यन्त्र है अतः यह संगीत का प्रतीक है। जिसका जीवन संगीतमय अर्थात् प्रेम से भरा होता है वह परमात्मा के आनन्द से कभी वञ्चित नहीं रहता। प्रेम का अर्थ है आपस में भाई-चारा, प्राणिमात्र के प्रति प्रेम। इसी को दार्शनिक भाषा में 'अहिंसा' कहते हैं। (गणपति की किसी प्रतिमा में इन चारों हाथों में अलग-अलग वस्तुएँ दिखाई देती हैं 1. ओ३म् चिह्न, 2. त्रिशूल, 3. कटारी और 4. शंख।)

मूषक-वाहन : मूषक खोजने के यन्त्र का प्रतीक है। कम्प्यूटर में इसे 'माउस' के नाम से जाना जाता है। चूहा भूमि खोदकर, अन्दर घुस कर तथा बिल बनाकर रहता है। भूमि खोदकर ही इमारत की नींव डाली जाती है। यहाँ तात्पर्य है कि राष्ट्रपति के गुप्तचर देश के भीतर-बाहर की जानकारी अपने

राष्ट्रपति को देते रहें ताकि समस्त राष्ट्र की सुरक्षा एवं समृद्धि में बाधा न पड़ सके और राष्ट्र में शान्ति बनी रहे। राष्ट्र के सभी छोटे-बड़े कर्मचारी राष्ट्रपति (शासन) के वफ़ादार हों और भूमि के भीतर-बाहर के सब पदार्थों (रत्न, धातु, तथा उत्पादन) की जानकारी देते रहें। राजा को चाहिये कि वह गुप्तचरों एवं कर्मचारियों की स्थिति को सुधारे ताकि उन्हें परदेश जाकर उनकी चाकरी न करनी पड़े और जाकर न बसना पड़े। राष्ट्र की उन्नति और समृद्धि में इन्हीं कर्मचारियों और गुप्तचरों का योगदान रहता है क्योंकि इन्हीं के कारण (कंधों पर सवार होकर) राष्ट्र प्रगति करता है। ये ही राष्ट्र के वाहक हैं।

मूषक के कर्ण : हम ने देखा और सुना है कि यदि गणपति का भक्त मूषक के कान में चुपके से अपने मन की बातें कहता है तो उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं - इस सन्दर्भ में आप स्वयं समझ सकते हैं कि आप गणपति में आस्था या विश्वास नहीं करते, यदि करते होते तो उसके पैरों तले बैठने वाले गणपति के सेवक मूषक से कही बातों का क्या लाभ? स्वयं 'गणपति' (सब का मालिक - परम पिता परमात्मा) आपके मन में विराजमान है और आप उस परमेश्वर को छोड़कर एक तुच्छ प्राणी (मूषक) को सिफ़ारिश कर रहे हैं - क्या इससे मालिक प्रसन्न होगा? आपकी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं - आपके विवेकपूर्वक किये हुए परिश्रम से। जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं परमात्मा उन को अपने लक्ष्य तक पहुँचने की प्रेरणा अवश्य प्रदान करता है।

गणपति मूर्ति का रंग चमकदार केसरी क्यों? : गणपति (परमात्मा) के अनेक गौणिक नामों में से एक नाम 'अग्नि' भी है। भौतिक अग्नि का रंग चमकीला केसरी होता है इसलिये मन्दिरों में 'गणपति की काल्पनिक प्रतिमा' का रंग चमकीला केसरी ही होता है। ईश्वर चेतन तत्त्व है, आकार रहित है, निराकार है अत: उसके रंग, रूप का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं हो सकता। गणपति-प्रतिमा मूर्तिकार की कल्पना है जो ईश्वर

के अनेक गुण-कर्म-स्वभावों को दर्शाती है। उपर्युक्त चिह्न मात्र समझाने हेतु हैं, इनका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं है।

अग्नि के सात गुण-कर्म-स्वभाव

ऊर्ध्वगमन, प्रकाश तेज, आत्मसार, विस्तार, संघर्ष एवं परोपकार।

1. **ऊर्ध्व-गमन :** ऊपर की ओर उठना (मनुष्य को सदा उन्नति करते रहना चाहिये),

2. **प्रकाश :** रोशनी प्रदान करना (हमें अपने गुण-कर्म-स्वभाव से दूसरों को भी लाभ पहुँचाना चाहिये),

3. **तेजः** सम्पर्क में आने वाली वस्तुओं को अपनी तपिश से भस्म करना तथा अपने भर्ग से अवगुणों (विघ्नेश्वर) को समाप्त कर पवित्र करना (मनुष्य को योग्य है कि वह दूसरों के अवगुणों को समाप्त करने का प्रयास करे तथा विकार-रहित बनाए),

4. **आत्मसार :** अपने जैसा अग्निमय बना देना (अपने सम्पर्क में आने वाले लोगों को अपने जैसा बनाना),

5. **विस्तार :** अग्नि आगे की ओर गति करती है इसलिये उसका प्रकाश दूरदूर तक जाता है। मनुष्य को भी सदा आगे की ओर बढ़ना चाहिये, विस्तार करना चाहिये तथा अपने सद्कर्मों से यश एवं ख्याति बढ़ाता रहे।

6. **संघर्ष :** उन्नति के लिये संघर्ष अर्थात् परिश्रम करना ज़रूरी है (अग्नि परिश्रम करने की प्रेरणा देती है), और

7. **परोपकार :** अग्नि परोपकार के लिये ही जलती है, यह जीवन अग्नि के कारण ही सम्भव है (अपने लिये तो सभी जीते हैं, मनुष्य वही कहलाने योग्य है जो दूसरों के परोपकार के लिये जीता है)। पाठकवृन्द प्रज्वलित 'अग्नि' को देखें और 'गणपति की प्रतिमा' को देखें, दोनों में कोई भेद दिखाई नहीं देगा क्योंकि परमात्मा का एक नाम 'अग्नि' अर्थात् 'गणपति' भी है। इसलिये लोग अपने घरों में 'ज्योत' जलाते हैं।

गणपति-पूजा का वैदिक अर्थ

गणेश जी एकमात्र ऐसे देवता हैं जिनकी पूजा अन्य देवी-देवताओं से पूर्व होती है। प्रिय बन्धुओ! इस के पूर्व लिख आये हैं कि प्रचलित गणपति की प्रतिमा (मूर्ति) एक प्रतीक है जो तीन वस्तुओं की जानकारी देती है: 1. गणों का स्वामी परम पिता परमात्मा, 2. यज्ञाग्नि और 3. राष्ट्रपति। इस रहस्य को समझकर ही हम गणपति की सही पूजा कर सकते हैं।

पूजा का अर्थः—पूजा* शब्द के अनेक अर्थ होते हैं – जैसे सेवा-सत्कार करना, आज्ञाओं का पालन करना, उपासना करना, धर्म का पालन करना, यथायोग्य उपयोग करना, कुकर्मी को दण्ड देना इत्यादि। ईश्वर की पूजा के सन्दर्भ में अर्थ निकलता है – परमात्मा की आज्ञाओं का पालन करना। वेद ईश्वरकृत होने से, वेदोक्त आज्ञाओं का पालन करना तथा वेदानुकूल बातों को रोज़-मर्रा के व्यवहारों में लाना – यही परमात्मा की सही पूजा होती है। ईश्वर एक है अतः ईश्वरप्रदत्त ज्ञान (वेद) सब मनुष्यों के लिये, सब काल में, सब स्थान में एकसा (समान) होता है और वेदोक्त बातों को जानना और मानना ही 'धर्म'** कहाता है।

[*विशेष* स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि यहाँ 'पूजा' का अर्थ जड़ और मूर्तिमान देवी-देवताओं की भाँति सम्मान-सत्कार करना नहीं है जैसे प्रायः लोग किया करते हैं। ईश्वर निराकार और सर्वव्यापक है अतः उसकी पूजा (जैसे पौराणिक लोग करते हैं—आरती उतारना, दीपक दिखाना, भेंट चढ़ाना, भोग लगाना इत्यादि) कभी नहीं की जा सकती। आजकल 'पूजा' शब्द इतना

प्रचलित हो गया है कि लोग ईश्वर की 'उपासना' के स्थान पर 'पूजा' शब्द का प्रयोग करते हैं। विद्वान् लोगों को परमात्मा के विषय में पूजा शब्द का प्रयोग न करके 'उपासना' शब्द का ही प्रयोग करना चाहिये। जिससे सामान्य लोगों में भ्रान्ति न फैल सके। लौकिक भाषा में 'पूजा' शब्द का ही अधिक चलन है, इसलिए हम इसका विरोध नहीं कर रहे। धर्म दिखाने के लिये अपितु अपनाने, ग्रहण करने या धारण करने के लिये होता है। वस्त्र बदलने, वेश-भूषा में परिवर्तन लाने, मन्त्रपाठ, करने, अग्निहोत्रादि करने या अपने गुरु के बताए नाम का स्मरण करने से भी कोई धार्मिक नहीं बनता। धर्म की राह सत्याचरण से प्रारम्भ होती है जो मुक्ति तक ले जाती है।]

उपासना : उप+आसना अर्थात् समीप में बैठना। 'उपासना' कहते हैं - परमात्मा के नज़दीक बैठना क्योंकि मात्र ईश्वर ही हमारा उपासनीय देव है। उपासना करने के लिये तीन वस्तुओं की ज़रूरत होती है 1. साध्य अर्थात् जिसकी साधना या पूजा की जाए, 2. साधक अर्थात् साधना करने वाला, और 3. साधन अर्थात् सामग्री या जिससे पूजा की जाए। ईश्वर साध्य है, मनुष्य साधक है और साधन है - ओ३म् नाम। इनमें से एक का भी अभाव होगा तो पूजा नहीं हो सकती।

पूजा का अर्थ एवं विधि : पूजा का अर्थ होता है: जिसकी पूजा करनी है उस वस्तु के गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार उस वस्तु का उचित तथा सही-सही उपयोग करना। अब प्रश्न उठता है कि पूजा किसकी करनी चाहिए? पूजा दो ही वस्तुओं की हो सकती है।

(1) जड़ पूजा, (2) चेतन पूजा।*

*पूजा करने से उस वस्तु के गुण पुजारी में आते हैं। जैसे अग्नि के समीप बैठने से अग्नि की गर्मी का अनुभव होता है वैसे ही जड़ पूजा करने से जड़ता ही प्राप्त होती है। अच्छे लोगों के संग से अच्छी-अच्छी बातें सीखने को मिलती हैं और बुरी संगत से बुराई ही प्राप्त होती है इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वह सोच-समझकर पूजा करे।

चेतन पूजा के दो भाग हैं: 1. दृश्यमान देवी-देवताओं की अर्थात् मूर्तिमान पूजा और 2. अमूर्तिमान अर्थात् निराकार परम पिता परमात्मा की पूजा।

(1) जड़ पूजा : जड़-पूजा का अर्थ है - जड़ देवताओं का ठीक-ठीक उपयोग/इस्तेमाल करना अर्थात् इनके व्यवहारमात्र से लाभ सिद्धि करना। सनातन वैदिक धर्म में मात्र 'तैंतीस कोटि देवताओं' का वर्णन है। **(कोटि शब्द के अनेक अर्थ हैं—स्तर, प्रकार तथा करोड़। यहाँ कोटि शब्द का अर्थ है—स्तर या प्रकार, ना कि करोड़)**। स्वाध्याय की कमी, अज्ञानता तथा तथाकथित गुरुओं के प्रवचनों के कारण कुछ लोग 'तैंतीस करोड़' देवताओं की कल्पना करते हैं, जो निराधार और अवैदिक होने से अमाननीय है। यदि ऐसे तथाकथित गुरुओं से 33 करोड़ देवताओं के बारे में पूछें तो वे कोई उत्तर नहीं दे पाएंगे तथा यहाँ-वहाँ बगलें झाँकते रह जाएंगे!

तैंतीस कोटि देवता : 8 वसु (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, द्यौ, चन्द्रमा और नक्षत्र), 11 रुद्र (दस : प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय और एक जीवात्मा), 12 आदित्य (वर्ष के 12 महीने), 1 इन्द्र (बिजली), 1 प्रजापति (यज्ञ) – (ऋ० 10/7/23), (यजु० 20/11), (अथर्व० 6/139/1) ये जड़ देवता व्यवहारमात्र की सिद्धि के लिये हैं।

जड़ देवताओं तथा वस्तुओं की पूजा अवश्य करनी चाहिये परन्तु वैसी पूजा नहीं जैसी पौराणिक लोग करते या मानते हैं। उदाहरण के तौर पर, गंगा नदी की पूजा, तुलसी इत्यादि पेड़-पौधों की पूजा, पाषाण मूर्तियों की पूजादि। यहाँ पूजा का अर्थ है—उन वस्तुओं का यथायोग्य सदुपयोग करना, उनसे लाभ उठाना, न कि उनकी आरती उतारना या फूलमाला इत्यादि जड़ वस्तुओं को जड़ वस्तुओं पर चढ़ाना। जड़ के साथ चेतन जैसा व्यवहार करना अनुचित है, एक पाखण्ड है, दिखावा है—इससे अन्धविश्वास और अन्धश्रद्धा फैलती है जिसका परिणाम अमूल्य समय का दुरुपयोग करना है जिसके फलस्वरूप दुःख ही प्राप्त

देवता विषय में दो प्रकार का भेद है - 1. मूर्तिमान और 2. अमूर्तिमान। माता, पिता, आचार्य और अतिथि ये चार मूर्तिमान देवता हैं और पाँचवाँ परब्रह्म अमूर्तिमान (निराकार) है अर्थात् उसका किसी प्रकार की मूर्ति नहीं है। इस प्रकार से उपर्युक्त पाँच देवों की पूजा में यह दो प्रकार का भेद है। उपासनीय महादेव एक परमात्मा है।

(ऋग्वेदभाष्यभूमिका: वेदविषयविचार)

होता है।

(2) मूर्तिमान पूजा : चेतन मूर्तिमान देवी-देवता होते हैं-हमारे पितर अर्थात् जीवित माता-पिता, बड़े-बुजुर्ग, गुरु, वैदिक विद्वान्, विद्वान् अतिथि और स्त्री के लिये उसका पति तथा पति के लिये उसकी पत्नी। स्मरण रहे कि पूजा अर्थात् "सेवा-सत्कार" केवल जीवित (शरीरधारी) व्यक्तियों का होता है, मृतकों या दिवंगतात्माओं का नहीं। मूर्तिमान देवों की पूजा का अर्थ है - उनकी उचित आज्ञाओं का यथायोग्य पालन करना, उनके बताए मार्ग पर चलना, उनकी उचित माँगों को पूरा करना, उनके खान-पान, वस्त्रादि, रहने की व्यवस्था तथा स्वास्थ्य सम्बन्धित सभी बातों का पूरा ध्यान रखना इत्यादि।

हमारे समाज में देवी-देवताओं की पूजा के बारे में अनेक भ्रान्तियाँ घर किये हैं अतः उनका निवारण करना अत्यन्त आवश्यक है। मूर्तिमान देवों की पूजा के लिये उनका जीवित और अपने समक्ष होना ज़रूरी है। पूजा जीवित की हो सकती है मृतक की नहीं। इसलिये वैदिक धर्म में दिवंगतात्माओं की पूजा का कोई विधान नहीं है।

पौराणिकों में 'श्राद्ध' (मृतकों की पुण्यतिथि पर उनकी तृप्ति तथा सद्गति के लिये ब्राह्मणों को भोजन खिलाना और दान-दक्षिणा

देना ताकि वह सब दिवंगतात्मों तक पहुँच सके) की परम्परा प्रचलित है – जो मात्र अन्धविश्वास है। स्मरण रहे कि जिसकी पूजा करनी है यदि वह व्यक्ति हमारे समक्ष नहीं है तो उसकी पूजा नहीं हो सकती।

(3) मूर्तिमान पूजा (उपासना): परम पिता परमात्मा जो समस्त ब्रह्माण्ड का स्वामी है वही देवों का देव अर्थात् महादेव कहाता है जिसकी उपासना (उसके गुण-कर्म-स्वभावों का स्मरण करके, उनको अपने जीवन में धारण करने का संकल्प और प्रयास करना) करना योग्य है। वही हमारा निराकार देव है और हम सब (जीवात्माएँ) उसी परम पिता परमात्मा की अमृतमयी सन्तानें हैं। हम मनुष्य हैं अतः यह परमावश्यक है कि हम उस परमेश्वर के बारे में कुछ जानने का प्रयास करें, जिससे हमारी पूजा पद्धति में किसी प्रकार की त्रुटि न होने पाये तभी तो हम उसकी पूजा करने के अधिकारी तथा सुपात्र बन सकते हैं। ईश्वर की उपासना का विधान है—नियमित रूप से (वेदादि ग्रन्थों का) स्वाध्याय करना, मानव-धर्म का आचरण करना, जीव मात्र से प्रीतिपूर्वक यथायोग्य वर्तना, ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना तथा यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म करना, अष्टाङ्ग-योग का प्रतिदिन अभ्यास करते रहना इत्यादि।

ईश्वर की उपासना करते हैं तो वहाँ ईश्वर का होना परम आवश्यक है। ईश्वर चेतन होने से निराकार, निर्लेप और सर्वव्यापक होने से सब के लिये सर्वदा विद्यमान है। आत्मा भी निराकार है परन्तु वह एकदेशी होने से इसी शरीर में निवास करता है। परमात्मा की उपासना उसकी सामग्री है—हमारे मन के शुभ और शुद्ध संकल्प। अतः परमात्मा की उपासना कहीं भी, कभी भी की जा सकती है और आवश्यकता है तो केवल हमारे शुद्ध संकल्पों की, शुद्ध भावों की। संक्षेप में ईश्वर साध्य है, आत्मा साधक है और उसकी पूजा सामग्री है—हमारा शुद्ध मन!

॥ इति गणपति पूजा ॥

जिज्ञासापूर्ण शंकाओं के वैदिक समाधान एवं समीक्षा

विमर्श : शिव, शंकर, शम्भू इत्यादि परमात्मा के गुण हैं। वह सदा कल्याण करता है इसलिये उसे सदाशिव कहते हैं। ईश्वर एक अद्वितीय नित्य चेतन सत्ता का नाम है। उसे हम सत्ता कहें या तत्त्व अथवा पदार्थ, चीज़ या वस्तु कहें, उससे ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव में कोई अन्तर नहीं आता। स्मरण रहे कि ईश्वर, जीव और प्रकृति - ये तीन वस्तुएँ नित्य कहाती हैं, इन के अतिरिक्त अन्य जितनी भी वस्तुएँ स्थूल या सूक्ष्म होती हैं, गिनती में आती हैं - सब प्रकृति से बनी सृष्टि के अन्तर्गत आती हैं। भूत, जादू, मन्तर, राक्षस, डायन इत्यादि डरावने नाम मात्र सीधे-सादे लोगों को भ्रमित करने के लिये ही होते हैं। वास्तव में ये सब पाखण्डियों की कल्पना है। सत्य सनातन धर्म ऐसी मनगढ़न्त बेतुकी बातों में विश्वास नहीं करता। विश्वास करना है तो ईश्वर में करना चाहिये।

यह सत्य है कि पुराणों की अनेक घटनाएँ आर्यावर्त के प्राचीन महापुरुषों के जीवन पर आधारित 'धर्म के मर्म' को समझाने हेतु लिखी गई हैं तथा उनको रोचक बनाने के लिये अनेक कहानियों का सहारा लिया गया है। कहानियाँ मात्र समझाने हेतु होती हैं, मनोरंजन के लिये होती हैं, उनमें सच्चाई नहीं होती और न ही उनमें कोई रहस्य छुपा होता है। प्रायः लोग उन अप्राकृतिक घटनाओं तथा दन्तकथाओं को सत्य मानकर भ्रमित तथा पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं। मनुष्य मननशील एवं विवेकशील प्राणी है अतः उसे किसी भी बात पर विश्वास करने तथा मानने

से पूर्व चाहिये कि वह उसे सत्य की कसौटी पर परख ले अन्यथा वह अन्धविश्वास एवं अन्धश्रद्धा के बन्धन में फँस जाएगा। यदि किसी व्यक्ति के मन में कोई शंका उत्पन्न होती है तो उसे उस शंका का समाधान किसी वैदिक विद्वान् से सम्पर्क कर अवश्य कर लेना चाहिये।

वर्तमान में प्रचलित तथाकथित धर्म-ग्रन्थों में कुछ-कुछ बातें सत्य पर आधारित होती हैं परन्तु अधिकतर बातें प्रकृति के नियमों के विरुद्ध होने से विश्वास करने योग्य नहीं होतीं। पुराणों में भी, हो सकता है कि पुराणों के लेखकों ने कहानियों के माध्यम से कुछ गूढ़ रहस्यों को समझाने का प्रयास किया हो अथवा कहानियों को रोचक बनाने हेतु अप्राकृतिक बातों का सहारा लिया हो, परन्तु ऐसा भी नहीं लगता क्योंकि पुराणकार वैदिक विद्वान् रहे होंगे। वे इस प्रकार की अनहोनी बातें नहीं लिख सकते। इस से तो यही अनुमान लगाया जा सकता है कि कालान्तर में उनमें भी स्वार्थी लोगों ने मिश्रण किया है।

कुछ घटनाएँ सत्य पर आधारित हो सकती हैं परन्तु अनेक कहानियाँ प्रकृति नियमों के विरुद्ध होने से विश्वास करने योग्य नहीं हैं। हो सकता है कि पुराणों के लेखकों ने कहानियों के माध्यम से कुछ रहस्यों को समझाने का प्रयास किया हो अथवा कहानियों को रोचक बनाने हेतु ऐसा लिखा हो परन्तु ऐसा भी नहीं लगता।

शंका 1: भगवान् शिवशंकर किसकी आराधना किया करते थे और किसके ध्यान में समाधि लगाया करते थे?

समाधान : योग दर्शनानुसार 'समाधि' योग साधना का अन्तिम पढ़ाव है (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और अन्त में समाधि)। समाध्यावस्था में एक स्वस्थ और सच्चा योगी ही पहुँच सकता है और वह भी अनेक वर्षों की साधना के पश्चात्। समाधि में आत्मा का परमात्मा से साक्षात्कार होता है अर्थात् आत्मा, परमात्मा के इतना समीप हो

जाता है कि वह स्वयं परमात्मामय हो जाता है और उसके आनन्द में मग्न हो जाता है। समाधि के समय की स्थिति का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता मात्र अनुभव किया जा सकता है। विरला ही कोई योगी इस समाध्यावस्था को प्राप्त होता है।

शिवजी महाराज एक सच्चे योगी थे अतः समाध्यावस्था को प्राप्त कर चुके थे। ईश्वर के सच्चे भक्त थे और नियमानुसार प्रातः और संध्याकाल ईश्वरोपासना करते थे। वे निराकार परमेश्वर का ही ध्यान धरते थे इसीलिये एकान्त में जाकर समाधि लगाते थे। वे धार्मिक और संयमी व्यक्तित्व के धनी थे। कैलास में रहने से कोई कैलासपति नहीं बन जाता।

'त्रिलोकीनाथ' तो वह निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ परम पिता परमात्मा ही होता है जो सृष्टि की रचना, व्यवस्था और संहार करता है। शिव और शंकर ईश्वर के गौणिक नाम हैं (शिव या शंकर का अर्थ है सब का भला करने वाला अर्थात् कल्याणकारी)। परमात्मा के अनेक नाम मनुष्य ने अपनाये हैं इसका अर्थ यह कदाचित् नहीं निकालना चाहिये कि वे सभी ईश्वर बन गए हैं। अतः त्रिलोकीनाथ परमात्मा के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता क्योंकि परमात्मा एक अद्वितीय है। परमात्मा कभी भी किसी भी परिस्थिति में देह धारण नहीं करता क्योंकि वह सर्वव्यापक होने से सब स्थान में, सब समय, सदा विद्यमान है।

समीक्षाः भगवान् शंकर निराकार परमात्मा की ही उपासना किया करते थे। उन्हीं के ध्यान में लीन होकर वे समाधिस्थ हो जाते थे। जो स्वयं परमात्मा होगा वह दूसरे किस परमात्मा की आराधना करेगा? इससे यह प्रमाणित होता है कि भगवान् शंकर स्वयं परमात्मा नहीं थे, अपितु परमात्मा के एक सच्चे भक्त योगी थे।

शिवजी महाराज ईश्वर के सच्चे भक्त थे और नियमानुसार

प्रातः और संध्याकाल ईश्वरोपासना करते थे। वे सच्चे ईश्वर-भक्त, धार्मिक और संयमी व्यक्तित्व के धनी थे। कैलास पर्वत पर रहने से उन्हें कैलासपति कहा जाता है। समाधि में लीन भगवान् शिव का दिव्य रूप सब को शान्ति प्रदान करता है। उन्हें देखते ही हमें ध्यान लगाने की प्रेरणा मिलती है। शिवजी का तीसरा नेत्र ज्ञान नेत्र है। यह नेत्र सब के पास होता है किन्तु सांसारिक विषय-वासनाओं में फँसे मनुष्य का यह नेत्र बन्द रहता है। यह नेत्र समाधि की ऊँची अवस्था में पहुँचने पर स्वयं ही खुल जाता है। इसके खुलते ही आत्म-ज्ञान प्राप्त हो जाता है। संसार के प्रति आसक्ति दूर हो जाती है तथा मोक्ष मिल जाता है।

शिवजी की यह मूर्ति सब के लिये प्रेरणादायक है क्योंकि इस मूर्ति में ईश्वर का ध्यान करने की विधि दर्शाई गई है।

शंका 2: माता पार्वती को अपने शरीर के उबटन से गणपति का निर्माण करने की आवश्यकता क्यों पड़ी? इससे पहले उन्होंने ऐसा क्यों नहीं किया?

समाधान : शिव पुराण की कथाएँ प्रकृति नियम के विरुद्ध होने से अमाननीय हैं। उन बातों पर कोई विश्वास नहीं कर सकता; ऐसी बेतुकी कहानियाँ तो फिल्मों में ही ठीक लगती हैं। माता पार्वती के बारे में ऐसी बेतुकी कहानियाँ बनाकर शिवपुराण जैसे ग्रन्थों का नाम लेकर मिलावट करना भारतीय संस्कृति पर प्रहार के समान है। इसका विरोध तो सब को करना ही चाहिये। दैवी शक्ति का दूसरा नाम है। - माता पार्वती। क्या माता पार्वती कभी कान या शरीर में से इतनी मैल निकाल सकती हैं? कदाचित् नहीं! शिवपुराण की इस मन-गढ़न्त कहानी से तो माता पार्वती जी का अपमान करना है कि जैसे वे कभी नहाती ही नहीं थीं - हमारी धैर्य की सीमा से तो बाहर है! है न? इस प्रकार के पुराण ऋषि ग्रन्थ नहीं हो सकते क्योंकि ऋषि ग्रन्थों में सत्य का दर्शन होता है, असत्य का नहीं!

समीक्षा : माता पार्वती के शरीर के उबटन से गणपति के निर्माण की कहानी यह प्रमाणित करने के लिये शिव-पुराण में लिखी गई है कि गणपति की उत्पत्ति माता पार्वती के गर्भ से नहीं हुई है। वे अयोनिज हैं। जैसे परमात्मा स्वंभू है वैसे ही गणपति स्वयंभू हैं। गणपति गर्भ से उत्पन्न हुए हैं या अयोनिज हैं इससे उनकी महानता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उनके बड़े भाई कार्तिकेय की उत्पत्ति माता पार्वती के गर्भ से ही हुई है और दक्षिण भारत में लोग उनकी पूजा भी करते हैं। तो गणपति की पूजा में कैसे बाधा आ सकती है? गणपति स्वयंभू परमात्मा नहीं हैं। जैसे उनके पिता सच्चे ईश्वर भक्त और योगी हैं उसी प्रकार गणपति भी हैं।

उबटन से पुतले का निर्माण करना, उसमें प्राण प्रतिष्ठा करके उसे बालक का रूप देना तथा उस बालक का तत्काल बड़ा हो जाना आदि बातें प्रकृति के नियम के विरुद्ध हैं। पार्वती की महिमा का बखान करने के लिये ही इस कथा को चमत्कारपूर्ण बनाया गया है। यह कहानी सत्य से कोसों दूर है।

शंका 3: कैलास पर्वत एक निर्जन क्षेत्र है जहाँ केवल शिव-पार्वती ही रहते थे। वहाँ उन्हें सुरक्षा की आवश्यकता क्यों पड़ गई?

समाधान : बात तो सही है जब कि माता पार्वती कान की मैल से यदि एक पुत्र का निर्माण कर सकती हैं तो अपनी सुरक्षा के लिये एक ताले का निर्माण क्यों नहीं किया और जब दोनों पति-पत्नी बाहर भ्रमण के लिये जाते होंगे तो उस समय घर की रखवाली कौन करता होगा? ख़ैर! एक प्रश्न और उत्पन्न होता है कि क्या वहाँ के लोगों में शिव-पार्वती का लेश मात्र भी डर नहीं था कि मकान में बिना पूछे भीतर घुस आते होंगे? यदि माता पार्वती घर में हैं तो निःसंदेह उनका शक्तिशाली वाहन 'शेर' घर के बाहर ही पहरेदारी करता होगा? फिर माता जी ने बालक गणेश का निर्माण क्यों किया? क्या उनको शेर पर

भरोसा नहीं था? क्या यह मुमकिन नहीं है कि वह शेर मात्र नाम का शेर हो या पत्थर का बना हो जिससे सामान्य लोग डरते होंगे?

दैवी शक्तिशाली माता पार्वती जी यदि अपने शरीर की मैल से एक मनुष्य का पुतला बनाकर उसमें प्राण प्रतिष्ठित करने में सक्षम थीं तो क्या अपनी सुरक्षा के लिये इससे पूर्व कुछ नहीं सोचा था उनके मन के भीतर अज्ञानता की मैल भरी होगी वरना पाठकों की भावनाओं से इस प्रकार की मज़ाक नहीं लिखता। हमारे देवी-देवताओं की मज़ाक उड़ाने वाले लोगों से कैसा सुलूक (व्यवहार) करना चाहिये - आप ही निर्णय कर सकते हैं।

जी हाँ! शिव-पुराण की ऐसी कहानियों को पढ़कर अनेक प्रश्न उत्पन्न हो सकते हैं। क्या कैलासवासियों में शिव-पार्वती का लेश मात्र भी डर नहीं था कि बिना पूछे मकान के भीतर घुस आते होंगे? यदि माता पार्वती घर में अकेली हैं तो निःसंदेह उनका शक्तिशाली वाहन 'शेर' घर के बाहर ही पहरेदारी करता ही होगा फिर माता जी ने बालक गणेश का निर्माण क्यों किया? क्या उनका शेर पर भरोसा नहीं था? इत्यादि।

समीक्षा : हो सकता है कि शिव-पुराण के रचयिता गणपति की उत्पत्ति का कारण बताना चाहते थे अथवा उसकी भूमिका बाँधना चाहते थे। वैसे भी स्त्रियाँ स्वभाव से ही लज्जालु, शंकालु और असुरक्षा की भावना से ग्रस्त रहती हैं। उनके इसी स्वभाव को आधार बनाकर पार्वती में सुरक्षा का भय उत्पन्न किया गया है। नहीं तो, इससे पहले भी पार्वती ने स्नान किया होगा। उस समय उनके मन में असुरक्षा की भावना क्यों उत्पन्न नहीं हुई? गणपति के जन्म के लिये ही पुराणकार ने पार्वती के मन में भय की भावना उत्पन्न की है। इससे लगता है कि पुराणकार ने कहानी को सत्यरूप देने के लिए अपनी चतुराई का प्रदर्शन किया है।

शंका 4: क्या माता पार्वती को स्नान करने के लिये ब्रह्म सहस्र वर्ष (मनुष्यों के लगभग डेढ़ पद्म वर्ष) का समय लगता था? यह कैसा स्नान था?

समाधान : आपने बहुत अच्छी शंका उठाई है और इसका समाधान हम क्या स्वयं पुराण को रचने वाले भी नहीं कर सकते क्योंकि उन्होंने कभी सोचा ही नहीं होगा की लोग यहाँ तक भी सोच सकते हैं। हम ने पहले भी यह स्पष्ट किया है कि शिवपुराण ही नहीं, पौराणिकों के सभी पुराणों में कहीं न कहीं मिलावट की गई है इसलिये उनमें ऐसी अनेक कथाएँ हैं जो किसी को भी गुमराह कर सकती हैं अतः ये सभी पुराणों को प्रमाणित ग्रन्थ नहीं हैं। पुराणों में अधिकांश घटनाएँ असत्य और अश्लील बातों पर आधारित हैं क्योंकि इन में हमारे पूजनीय देवी-देवताओं की अकथनीय और अश्रवणीय निन्दा की गई है। भला ऐसी पुस्तकों को कौन सभ्य समाज विश्वास कर सकता है, अपनाने का तो प्रश्न ही नहीं उठा सकता। यही मुख्य कारण है कि इन पौराणिक तथाकथित पुराणों को कोई भी अपने परिवार में स्वाध्याय के लिये भी नहीं रखता। विशेषतः 'शिव पुराण' को। और तो और, यदि कोई पौराणिक पण्डितों से प्रश्न पूछे तो वे उसका कोई उत्तर नहीं दे पाते और शंका करने वाले को ही अनाड़ी और नास्तिक कहते हैं। वास्तव में अज्ञानी को अनाड़ी कहते हैं तथा वेद निन्दक को नास्तिक कहते हैं।

पाठकवृन्द की जानकारी के लिये मनुस्मृति के अनुसार सहस्र ब्रह्मवर्ष अर्थात् 1000 x 360 x 4,32,00,00,000 =1,55,52,36,00,00,00,00,000 पृथ्वी के वर्ष और यदि इतने वर्षों को 365 दिनों से गुणा करें तो उत्तर क्या होगा, ज़रा देखें तो सही=5,67,66,11,40,00,00,00,000 अर्थात् 567661140 खरब दिन। अब आप स्वयं ही गणना कर सकते हैं कि इनकी गिनती करने में ही कितने वर्ष लग सकते हैं कल्पना कीजिये कि क्या कोई इतने दिनों तक कोई बिना खाए-पिए-सोए इतने बर्फ़ीले

ठंडे पानी में नहा सकता है? यदि कहो कि माता पार्वती दैवी शक्ति से परिपूर्ण थीं तो फिर एक और शंका उत्पन्न होगी कि उनको उसी दिन नहाने की क्यों सूझी और इतनी आवश्यकता क्यों पड़ी? इसके अतिरिक्त उनकी सहेलियों के घरों में से किसी पति को भी अपनी गृहिणियों की याद नहीं आई? एक अज्ञानी नासमझ मनुष्य भी ऐसी अनहोनी कथाओं पर विश्वास नहीं कर सकता। क्या माता पार्वती की तथा उनकी सहेलियों की आयु (जितनी नहाने से पूर्व थी) उतनी ही रही होगी या बढ़ी थी? और तो और बाल गणेश भी जितना छोटा बच्चा था उतना ही रहा होगा या उसकी आयु भी बढ़ी होगी। इस प्रकार के अनेक प्रश्नों का उत्तर तो पुराण के रचयिता भी नहीं दे सकते।

समीक्षा : आपने बहुत अच्छी शंका उठाई है। शिव-पुराणकार ने संभवतः शिव, पार्वती तथा गणपति को देवताओं की कोटि में डालकर उन्हें उन्हीं की तरह दीर्घायु प्रमाणित करने का प्रयास किया है। यदि हम शिव जी को देव तथा दीर्घायु मान भी लें तो पार्वती तथा गणपति को उस श्रेणी में कैसे मान सकते हैं? पार्वती तो पर्वतराज की पुत्री थी। उनका शरीर तो मनुष्य का था। गणपति का शरीर भी मिट्टी से निर्मित था जिस पर हाथी का सिर लगाया गया था। मानव शरीर चाहे जितना दीर्घायु हो जाए वह करोड़ों वर्ष जीवित नहीं रह सकता। पार्वती के दीर्घकालीन स्नान से पुराणकार उनकी दीर्घायु प्रमाणित करना चाहता था जो किसी तरह भी संभव सिद्ध नहीं हो सकता है।

शंका 5: देवताओं की काल गणना तथा मनुष्यों की काल गणना में क्या अन्तर है?

समाधान : मनुस्मृति के अनुसार देवताओं की काल गणना इस प्रकार से की गई है:-

1 दैवदिन = 360 पृथ्वी के वर्ष।

100 दैवदिन = 3600 = दैव वर्ष।

सतयुग = 1,728,000 वर्ष।

4000 दैववर्ष = 4000 x 360 = 1440000

त्रेतायुग = 12, 96, 000 वर्ष।

द्वापरयुग = 8,64,000 वर्ष।

कलियुग = 4,32,000 वर्ष।

चतुर्युगी = उपर्युक्त चारों युगों का जोड़ = 43,20,000 वर्ष।

ब्रह्मदिवस = 1000 चतुर्युगियाँ = 4,32,00,00,000 वर्ष।

मन्वन्तर = 71 चतुर्युगियाँ।

71 चतुर्युगियाँ = 71 x 43,20,000 = 30,67,20,000 वर्ष।

14 मन्वन्तर = 30,67,20,000 x 14 = 4,29,40,80,000 वर्ष अर्थात् ब्रह्म का एक दिवस।

71 चतुर्युगियाँ x 14 मन्वन्तर = 994 चतुर्युगियाँ।

एक ब्रह्मदिवस में 1000 चतुर्युगियाँ होतीं हैं। 'यहाँ 994 चतुर्युगियाँ बताई गई हैं। इनमें जो 6 चतुर्युगियाँ =2,59,20,000 वर्ष कम हो रहे हैं। जानकारी के लिये बता दें कि इसमें से 3 चतुर्युगियों का समय उत्पत्ति के समय प्रकृति से सृष्टि की उत्पत्ति होने में लगता है तथा चतुर्युगियों का समय प्रलयावस्था में सृष्टि का प्रकृति में विलीन होने में व्यतीत होता है। अत: ब्रह्मदिवस हुआ = 1000 चतुर्युगियाँ = 4,32,00,00,000 पृथ्वी के वर्ष अर्थात् एक सृष्टि एवं प्रलय का समय। यह ब्रह्मा का एक दिवस कहाता है और ब्रह्मा के 360 दिनों का एक ब्रह्मवर्ष कहाता है। सहस्र ब्रह्मवर्ष अर्थात् 1000 x 360 x 4,32,00,00,000 =1,55,52,36,00,00,00,00,000 पृथ्वी के वर्ष। यदि इतने वर्षों को 365 दिनों से गुणा करेंगे तो उसका योग बनेगा - 5,67,66,11,40,00,00,00,00,000 अर्थात् मनुष्यों के 5676611400 खरब दिन।

शंका 6: क्या बाल गणेश अकेले ही सहस्र वर्षों तक ब्रह्मा, विष्णु और महेश की सहस्र कोटि सेनाओं से लड़ता रहा - क्या यह सम्भव है? इतने काल में अनेक बार सृष्टि का प्रलय और निर्माण हुआ होगा?

समाधान : हमने ऊपर की शंका में गणना करके यह दिखाने का प्रयास किया है कि कोई भी बुद्धिजीवी ऐसी अप्राकृतिक अनहोनी अविश्वसनीय कथाओं पर कभी विश्वास नहीं कर सकता। एक छोटा बालक गणेश करोड़ों की संख्या वाली सेना के साथ अकेला सहस्र ब्रह्म (1,55,52,36,00,00,00,00,000) वर्षों तक लड़े और विजय पाए – यह असम्भव है। क्या ऐसी बातों पर भरोसा करना अपनी ही संस्कृति और सभ्यता का मज़ाक उड़ाना नहीं है? मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी इस बात को नहीं मान सकता। धर्म में आस्था रखने वाला व्यक्ति यदि उपर्युक्त घटना को मानता है तो आप उसकी मन:स्थिति समझ सकते हैं! कहने/लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है!

प्राकृतिक नियमों का पालन करने वाले सामान्य शरीरधारी मनुष्य की आयु 100 वर्ष की हो सकती है और एक महान योगी की आयु अधिकतम 400 वर्ष तक की सम्भव है परन्तु शिव पुराणों बालक गणपति इतने काल तक लड़ता रहा और उतने का उतने ही रहा – यह कदापि सम्भव नहीं है। और यह भी गपोड़ा ही है कि माता पार्वती सहस्र ब्रह्म वर्षों नहाती रहीं। समझ में नहीं आता कि ऐसे कथाकारों को क्या कहना चाहिये। जो लोग ऐसी बातों को मानते हैं – ईश्वर की कृपा से उनको सद्बुद्धि प्राप्त हो।

समीक्षा : इसके पीछे भी गणपति को देव तथा उन्हीं की तरह दीर्घायु एवं शक्तिशाली प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है। जो देवताओं के साथ उनके दिव्य सहस्र वर्षों तक युद्ध कर सकता है और अपने को हारने नहीं देता वह भी उन्हीं की तरह शक्तिशाली प्रमाणित हो जाता है। गणपति को भी ऐसा ही साबित करने का प्रयास पुराणकार ने किया है जो विचारणीय विषय है।

शंका 7: यदि भगवान् शंकर त्रिकालदर्शी थे तो उन्हें

कैसे नहीं पता चला कि पार्वती ने किस प्रकार गणेश का निर्माण किया था?

समाधान : शिव पुराण के शंकर भगवान यदि त्रिलोकीनाथ (सर्वज्ञ) होते तो बाल गणेश से बिना पूछे-बताए सब कुछ स्वयं ही समझ जाते होते परन्तु ऐसा कुछ भी नहीं था। वे तो एक महान योगी और संयमी पुरुष थे।

शिव पुराण के महानायक शंकर जी में ऐसी कोई बात थी ही नहीं क्योंकि वे साधना के पश्चात् आते ही एक बालक के रोकने पर भी नहीं रुके और बिना सोचे-समझे छोटे से बालक के साथ झगड़ा मोल लिया। उनमें धैर्य और संयम नाम की कोई चीज़ थी ही नहीं वरना वे बार-बार एक छोटे बाल-गणेश से परास्त न होते और दूसरे (विष्णु) के बहकावे में आकर छल-कपट से बालगणेश का वध कर दिया - ये एक सच्चे योगी पुरुष (शंकर भगवान जैसे योगी) के लक्षण नहीं हो सकते।

हमारे पूज्यनीय शंकर भगवान[3] ऐसे नहीं हो जिसकी हम लोग पूजा किया करें। हमारे शिव-शंकर तो सकल जगत् के उत्पतिकर्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता, सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र, सृष्टिकर्त्ता, सृष्टिहर्त्ता, सृष्टिहर्त्ता हैं। वही परमेश्वर हमारा माता, पिता, बन्धु, सखा, साक्षी, हमारे सब नाम-स्थान जन्मों को जानने वाला गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है। हम सब को मिलकर सदा उसी की स्तुति-प्रार्थना उपासना करनी चाहिये।

[(3) परम पिता परमात्मा को भी-कभी हम प्रेम से 'भगवान्' कहकर भी पुकारते हैं। भगवान् कहते हैं गुणों से सम्पन्न महात्मा को। जैसे बल वाले को बलवान, धन वाले को धनवान् वैसे ही भग (गुण) वाले को भगवान् कहते हैं। ईश्वर

अनन्त गुणों वाला है इसलिये उसको भी 'भगवान्' कहें तो कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।]

समीक्षा : पुराणकार ने इस घटना में भगवान् शंकर की त्रिकाल-दर्शिता न दिखाकर मात्र गणपति की महत्ता दिखाई है उसने दोनों का युद्ध दिखाने के लिये तथा 'पिता से बढ़कर पुत्र' इस कथन को प्रमाणित करने के लिये ही इस कहानी का निर्माण किया है। बिना कारण के क्रोध नहीं आता और बिना क्रोध के युद्ध नहीं होता। इसलिये कथाकार ने शिव के क्रोध का कारण उपस्थित कर दिया, जो कि उसका एक असफल प्रयास था। शिवजी को अत्रिकालदर्शी साबित करना आवश्यक नहीं था।

शंका 8: शिवजी ने विष्णु के कहने पर पीछे से वार करके गणपति का सिर त्रिशूल से क्यों काटा? क्या यह एक देव अथवा योगी के लिये उचित था? उन्होंने छल का सहारा क्यों लिया?

समाधान : जी हाँ! शिवपुराण की कहानी में तो दूसरा ही कोई शंकर नाम नामेण व्यक्ति प्रतीत होता है जिसको शीघ्र ही गुस्सा आने लगता है और जो दूसरों के बहकावे आकर किसी अन्य की हत्या करने से भी नहीं चूकता।

जिस महादेव भगवान् शंकर जी को सारी दुनियाँ जानती-मानती है वह एक अद्वितीय सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है, वह किसी की सहायता लिये बिना ही समस्त सृष्टि की उत्पत्ति, रक्षा और समय आने पर संहार करता है। वही संसार के समस्त देवों का देव महादेव है। वह सब पर कृपा करता है, भला वह सर्वेश्वर एक छोटे से बालक को बिना किसी कारण के क्योंकर मारेगा? सब से बड़ी बात तो यही है कि परमात्मा कभी शरीर धारण नहीं करता।

शरीरधारी जीव (मनुष्य) का ज्ञान, शक्ति और पराक्रम

सीमित होता है तथा कर्म करने में स्वतन्त्र होता है इसलिये उसमें अनेक प्रकार के विकार आ जाते हैं। काम, क्रोध ,लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, चुग;ली, दूसरे के बहकावे में आना, छल, कपटादि विकारों का प्रवेश होना कोई नई बात नहीं है। एक छोटे से बच्चे के साथ लड़ना किसी बड़े नामी-ग्रामी विवेकशील महानुभाव का काम नहीं हो सकता। स्वयं में लड़ने की शक्ति का अभाव और दूसरों (ब्रह्मा और विष्णु) से सहायता माँगना तो यही दर्शाती है कि वह शंकर, देवाधिदेव महादेव नहीं हो सकता।

जिस शंकर महादेव भगवान की हम बात करते हैं या कल्पना करते हैं, वह इतना निर्बल और असहाय नहीं है। वह त्रिलोकीनाथ मात्र परम पिता परमात्मा ही है जो तीनों लोकों का एक ही स्वामी है।

समीक्षा : पुराणकार ने अपनी बुद्धि की चतुराई का परिचय यहाँ भी दिया है। सहस्रों वर्षों तक आमने-सामने लड़कर भी जब शिव अथवा विष्णु उस बालक को जीत नहीं पाये तब उन्होंने छल का सहारा लिया अर्थात् धोखे से तो गणपति को मारा जा सकता था किन्तु आमने-सामने लड़कर नहीं। यहाँ भी शिव अथवा विष्णु की कायरता दिखाने पीछे गणपति का उत्कर्ष दिखाना ही पुराणकार का उद्देश्य रहा

शंका 9: गणपति का सिर कटने पर कहाँ गिरा? यदि धरती, स्वर्ग और नरक इन तीनों लोकों में भी ढूँढ़ने पर नहीं मिला तो क्या वह अन्तरिक्ष में चला गया जहाँ ढूँढ़ना सम्भव नहीं था?

समाधान : लगता तो ऐसे ही है कि तीनों लोकों के अतिरिक्त और भी लोक हैं। यदि शिवजी महाराज इतने शक्तिशाली थे कि उनके त्रिशूल से कटा सर सब लोकों से परे जाकर गिरा तथा वे एक बच्चे का सामना नहीं कर पाए और हर बार नाकाम हुए, परास्त होते रहे - ऐसा नामुमकिन है।

वास्तव में ब्रह्मा, विष्णु और महेश एक ही चेतन सत्ता परम पिता परमात्मा के गौणिक नाम हैं। ब्रह्मा कहते हैं – सब से महान को, विष्णु कहते हैं – कण-कण में विद्यमान को और महेश का अर्थ है – महान ईश अर्थात् जो सब का ईश्वर है। जो एक बच्चे से लड़ नहीं सकता, दूसरों की सहायता माँगता है और दूसरे के कहने पर छल से हत्या करता है – वह त्रिलोकीनाथ शंकर महादेव नहीं हो सकता। यह भी सम्भव है कि उपरोक्त कथा असत्य है, बनावटी और निराधार है। लगता है शिवपुराण के कथाकार ने बच्चों को लुभाने के लिये इस बचकानी कहानी का निर्माण किया होगा।

समीक्षा : पुराणकार का यह आशय तो स्पष्ट है कि वह गणपति के सिर पर एक हाथी के बच्चे का सिर लगवाना चाहता था इसीलिये उसने यह बता दिया कि गणपति का असली सिर तीनों लोकों में ढूँढ़ने पर भी नहीं मिला। एक मनुष्य के सिर पर हाथी का सिर बिठाकर उसने गणपति को आधा हाथी और आधा मनुष्य दिखाने का प्रयास किया है। यहाँ भी पुराणकार की चतुराई दिखाई दे रही है।

शंका 10: मनुष्य के शरीर पर हाथी का सिर दिखाने के पीछे पुराणकार का क्या उद्देश्य हो सकता है?

समाधान : परमेश्वर के बनाए प्रकृति के नियम अटल एवं अपरिवर्तनशील होते हैं अतः कोई भी क्यों न हो, इन नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकता। मनुष्य के नवजात शिशु का सिर की गोलाई और एक हाथी के बच्चे के सिर की गोलाई में बहुत अधिक अन्तर होता है अतः दोनों में फ़र्क होने से दोनों का मेल नहीं हो सकता है। हम कुछ नहीं बता सकते हैं कि उनको जोड़ने की शल्यक्रिया (ऑपरेशन/सर्जरी) किस ने की होगी। हमें यह भी मालूम नहीं कि एक पशु और मनुष्य के रक्त ग्रुप आपस में कैसे मिले होंगे? क्योंकि किसी भी दो भिन्न-भिन्न जातियों के रक्त ग्रुप आपस में मेल नहीं खाते।

आप ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं ज्ञानपूर्ण शंका उठाई है "मान भी लो कि ऑपरेशन सफल हो गया तो हाथी का सिर उसका मुँह ऊपर आकाश की ओर होना चाहिये जो कि प्रचलित गणपति की मूर्ति में नहीं दिखता। इस प्रश्न का उत्तर तो पुराण के रचयिता भी नहीं दे सकते हैं। अत: 'शिव पुराण' की उपरोक्त कथा निराधार होने से किसी भी विवेकशील मनुष्य के मानने योग्य नहीं है और यदि कोई उसको मानता भी है तो यह अन्धविश्वास और अन्धश्रद्धा की पराकाष्ठा होगी। सत्य सदा सत्य होता है और सत्य को जानना और मानना ही मनुष्य का धर्म कहाता है।

समीक्षा : इसके माध्यम से शायद पुराण के रचयिता ने निम्नलिखित बातें सिद्ध करने का प्रयास किया है।

1. संसार कितना भी छल, कपट और धोखे का सहारा ले किन्तु वह एक व्यक्ति के गुणों तथा शक्ति को दबा नहीं सकता। वे एक न एक दिन उभर कर सामने आ ही जाती हैं।

2. केवल मनुष्य योनि पाकर ही शुभ कर्म नहीं किये जा सकते, अपितु मनुष्य के संस्कार पशु योनि में भी शुभ कर्म करने के लिये प्रेरित करते रहते हैं।

3. हाथी एक समझदार, शक्तिशाली तथा शान्त प्राणी होता है किन्तु यदि क्रोधित हो जाये तो सब का सर्वनाश करने में सक्षम होता है। अपने गुस्से पर क़ाबू रखना तथा समय आने पर अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना हाथी का गुण होता है।

4. हाथी एक शाकाहारी प्राणी होता है जो किसी भी जीव को बिना हानि पहुँचाए अपना पेट भरता है। वह अपना पेट भरने के लिये हिंसा, क्रूरता, शक्ति-प्रदर्शन, छल, कपट तथा धोखे का सहारा नहीं लेता।

5. वह पढ़ा-लिखा तथा प्रशिक्षित न होने पर भी अन्य प्राणियों से अधिक समझदार होता है। उसमें सेवा, सहायता, परिश्रम आदि अनेक गुण पाये जाते हैं। तभी तो वह मनुष्यों के

लिये सब से उपयोगी प्राणी होते हैं। वे युद्ध तथा भारी वस्तुएँ उठाने में भी निपुण होते हैं।

गणपति का स्वरूप हमें अनन्त शिक्षाएँ प्रदान करता है। गणपति ने एक तुच्छ मूषक को अपना वाहन बनाकर उसे सम्मान प्रदान किया। क्या मनुष्य ऐसा कहता है? नहीं। वह तो उसे पद-दलित और अपमानित करता है। उसे बड़े लोग ही दिखाई देते हैं, छोटे नहीं! जो छोटों को बड़ा बनाकर देखता है, समझो वही गणपति का सच्चा पुजारी है। यदि हम गणपति के सच्चे भक्त बनना चाहते हैं तो हमें उनके दिव्य गुणों को अपनाना होगा। शिव पुराणकार ने यही संदेश देने के लिये संभवतः गणपति के इस अर्ध-मानव स्वरूप का वर्णन किया है।

शंका 11: शिव के तीसरे नेत्र का क्या रहस्य है? क्या वह क्रोध और विनाश का प्रतीक है?

समाधान : उस शिवशंकर (ईश्वर) का कोई तीसरा नेत्र नहीं है क्योंकि वह सर्वेश्वर अकाय और सर्वव्यापक है अतः उसके तृतीय नेत्र की कल्पना करना अज्ञानता है। अलंकारिक भाषा में वह असंख्य नेत्रों वाला है अर्थात परमात्मा सर्वव्यापक होने से सब को, सब जगह बराबर देख रहा है परन्तु भौतिक नेत्रों से नहीं, अपितु चेतन सर्वान्तर्यामी होने से सब के भीतर-बाहर विद्यमान होने से सब कुछ जानता है। ईश्वर को तीन नेत्रों वाला कहने से उस परमात्मा का निरादर करना है।

रही बात महाप्रलय की तो यह सब बेकार की बातें हैं। महाप्रलय सृष्टिकाल का समय समाप्त होने पर ईश्वर करता है-यही विधि का विधान है एवं प्रकृति का अटल नियम है। बिना कारण के परमात्मा किसी भी जीव का अहित (बुरा) नहीं करता क्योंकि वह शिव अर्थात् कल्याणकारी है। सृष्टि का समय समाप्त होने पर प्रलयावस्था होती है यही प्रकृति का नियम है और उसका नियन्ता वही एक परम पिता परमात्मा है।

एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि परमात्मा (शिव) को

कभी किसी पर गुस्सा नहीं आता। वह कभी किसी से प्रसन्न या नाराज़ भी नहीं होता क्योंकि वह निर्विकार है अर्थात् उसमें किसी भी परिस्थिति में कोई विकार नहीं आता। वह सदैव एकरस रहता है। मनुष्य अल्पज्ञानी और अल्पशक्तिवान (कमज़ोर) होने से तथा परिस्थितियों के कारण विकारी बन जाता है और उसमें काम, क्रोधादि जैसे विकार आते हैं।

लौकिक भाषा में ज्ञान-चक्षु को ही तीसरा नेत्र कहते हैं जिसका स्थान आज्ञा चक्र अर्थात् दोनों नेत्रों के बीच, भवों के मध्य भाग में होता है। यही वह स्थान है जहाँ साधक ध्यान लगाते हैं। मनुष्य को जब कोई घटना स्मरण नहीं होती तो वह अपनी अंगुलियों से इसी स्थान पर ज़ोर लगाता है अतः लौकिक भाषा में मनुष्य का यही तीसरा नेत्र है। यह तीसरा नेत्र ज्ञाननेत्र है। इस पर जोर लगाने से क्रोध नहीं आता, अपितु ज्ञानपूर्वक सोचने-समझने की शक्ति जागृत होती है।

ऐसा सुना जाता है कि शंकर जी आग-बबूला होते हैं तो सर्वनाश करते हैं यदि ऐसा है तो आप ही सोचिये कि वे भगवान् नहीं हो सकते। जिस शंकर की तस्वीर में उसकी तीसरी आँख दिखाई देती है आप ही सोचिये कि क्या कभी कोई ऐसा प्राणी देखा है? यह एक योगी का काल्पनिक चित्र है जिसका वर्णन हम अन्य स्थान पर करेंगे।

समीक्षा : वास्तव में शिव का तीसरा नेत्र ज्ञान-चक्षु है अर्थात् आसक्ति से रहित पूर्ण विवेक का नेत्र। इस नेत्र के खुलने पर क्रोध और महा-प्रलय की स्थिति अवश्य उत्पन्न हो जाती है किन्तु बुराइयों का ध्वंस करने के लिये। 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' अर्थात् सज्जनों की रक्षा एवं दुष्टों का विनाश करने के लिये ही यह तीसरा नेत्र खुलता है। यही शिवजी का भी उद्देश्य है और गणपति का भी तथा संसार के समस्त महापुरुषों का यही उद्देश्य है।

शिवजी के माथे पर जो तीसरा नेत्र खुला हुआ दिखाया गया

है वह वस्तुतः खुला नहीं होता। लोगों को समझाने के लिये माथे पर नेत्र दिखाया गया है। ज्ञान-चक्षु वास्तव में विवेक होता है जिसे देखा नहीं जा सकता इसलिये उस नेत्र को प्रतीक ही मानना चाहिये, न कि आँख।

महर्षि पतञ्जलि ने इसे ही आज्ञाचक्र कहा है। इसके खुल जाने से योगी को अनेक दिव्य शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

लौकिक भाषा में ज्ञान-चक्षु को ही तीसरा नेत्र कहते हैं जिसका स्थान आज्ञा चक्र अर्थात् दोनों नेत्रों के बीच, भवों के मध्य भाग में होता है। यही वह स्थान है जहाँ साधक ध्यान लगाते हैं। मनुष्य को जब कोई घटना स्मरण नहीं होती तो वह अपनी अंगुलियों से इसी स्थान पर ज़ोर लगाते हैं अतः लौकिक भाषा में मनुष्य का यही तीसरा नेत्र है। यह तीसरा नेत्र ज्ञाननेत्र है। इस पर ज़ोर लगाने से क्रोध नहीं आता अपितु ज्ञानपूर्वक सोचने-समझने की शक्ति जागृत होती है।

शंका 12: यदि गणपति परमात्मा हैं तो उनके रिश्तेदार मनुष्य क्यों हैं? यदि गणपति मनुष्य हैं तो वे परमात्मा कैसे हो सकते हैं?

समाधान : जिसके माता, पिता और भाई, बहन, और अन्य सगे-सम्बन्धी होते हैं वह ईश्वर नहीं हो सकता, मनुष्य होता है क्योंकि परमात्मा स्वयंभू होने से उसके माता, पिता या भाई, बन्धु नहीं होते। परमात्मा प्रकृति से सृष्टि का निर्माण कर सब जीवों के कर्मानुसार उनको शरीर प्रदान करता है तथा सब जीवों का हितैषी है और सर्वोपरि है इसी कारण हम उसे अपना माता, पिता, बन्धु और सखा मानते हैं। वह परमात्मा सब जीवों के शरीर का निर्माण करता है इसलिये वह हमारी माता, सब की रक्षा करता है अतः हमारा पिता, सब का हित करता है इसलिये वह हमारा बन्धु और मित्रवत् हमारी बातें सुनता है अतः हम उसे अपना सखा जानते और मानते हैं।

यदि परमात्मा के माता, पिता या उसकी कोई पत्नी और बच्चे इत्यादि रिश्तेदार होते तो वह संसार के प्रपञ्चों में ही उलझा रहता और जिसका शरीर होता है उसको अन्त समय में रोग भी घेरे रहते हैं अर्थात् उसमें विकार आने लगते हैं और जिसमें विकार होते हैं वह ईश्वर नहीं हो सकता क्योंकि परमात्मा सब प्रकार के विकारों से रहित निर्विकार होता है–इससे भी प्रमाणित होता है कि पुराणों में वर्णित शिव–शंकर, गणपति या अन्य पात्र जिसके माता, पिता, सास, ससुर इत्यादि हैं। उनमें से कोई भी परमात्मा नहीं हो सकता। जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु अटल है, अवश्यम्भावी है अर्थात् होनी ही है। और जो जन्म–मरण के चक्र में आता–जाता रहता है, वह ईश्वर नहीं हो सकता क्योंकि परमात्मा जन्म–मृत्यु से परे, अजर, अमर और नित्य है।

समीक्षा : गणपति का वर्णन अर्ध देवों में आता है अर्थात् वे आधे देव और मानव हैं। यदि उनके पिता देव हैं तो उनकी माता–पिता एक आर्य कन्या हैं। इसलिये गणपति भी अर्ध देव हैं किन्तु उन्होंने महान तपस्या, ध्यान एवं समाधि से देवों से भी बढ़कर शक्तियाँ प्राप्त की हैं। आख़िर वे भी देवाधिदेव महादेव के पुत्र हैं। जिसका पिता शक्तिशाली हो उसका पुत्र दुर्बल कैसे हो सकता है?

गणपति के सारे सम्बन्धी मनुष्य ही हैं। उनकी पत्नी ऋद्धि–सिद्धि हैं जिन्होंने संतोषी नामक जगत्–हितकारी कन्या को जन्म दिया है जो संतोषी माता के नाम से प्रसिद्ध हैं।

शंका 13: ऐसा माना जाता है कि शंकर भगवान की सवारी नंदी बैल है, गले में सर्प है तथा माता पार्वती का वाहन शेर है और गणपति मूषक पर सवारी करते हैं। आखिर एक ही घर में ये चारों प्राणी एक साथ कैसे रहते होंगे?

समाधान : यदि तीनों के वाहन जीते-जागते प्राणी हैं तो वे तीनों एक साथ कदाचित् नहीं रह सकते और यदि मान भी लो कि एक साथ रहते हैं तो घर नहीं, जंगल होगा। यदि नंदी, शेर और मूषक ये तीनों वाहनों के मात्र नाम हैं तो ठीक है। जिस प्रकार हमारे देश में 'मारुति' नाम की एक कार (वाहन) है और मराठी भाषा में बन्दर को 'मारुति' कहते हैं और वैसे ही अनेक लोग अपने घरों में कुत्ता पालते हैं और उसका नाम लायन, शेर या शेरू रखते हैं। उस नाम रखने से कुत्ता शेर नहीं बन जाता या मारुति नाम की गाड़ी बन्दर नहीं बन जाती है उसी प्रकार हो सकता है कि 'नंदी', 'शेर' और 'मूषक' प्राणी न होकर वाहनों के नाम हों परन्तु कोई कहे कि नहीं, वे तीनों सचमुच के बैल, शेर और मूषक हैं तो यह बात मानने योग्य नहीं है क्योंकि ये तीनों प्राणी एक साथ एक ही मकान में कभी नहीं रह सकते और यदि रहते हैं तो उस घर की स्थिति क्या होगी - कल्पना कीजिये। चूहा विद्यमान है है तो बिल्ली भी कहीं न कहीं होगी और चूहे पर आक्रमण की तैयारी में होगी अथवा चूहा बिल्ली के दर्शन करते ही अपनी जान बचाने के लिये अपने स्वामी को छोड़ भाग खड़ा होता होगा और किसी सुरक्षित स्थान में छुपकर डरा-डरा सा, सहमा सहमा सा रहता होगा। दूसरी ओर बेचारे नंदी बैल को भी हमेशा शिवजी के सर्पों से बच कर रहना पड़ता होगा तथा घर में घुसते ही माता पार्वती के शेर के मुँह का निवाला बन जाता होगा। रही बात शेर की तो उसको कोई चिन्ता नहीं, आराम ही आराम, भूखे पेट तो रहता नहीं होगा और न ही उसे यहाँ-वहाँ भटकने की आवश्यकता पड़ती होगी क्योंकि शिवजी महाराज प्रतिदिन नये नंदी बैल को घर में लाते ही होंगे। गणपति का मूषक सदा भयभीत, शिवजी का नन्दी बैल भी सहमा-सहमा और घर में रोज़-मर्रा की गिले-शिकवे, शिकायतों का आलम आप ही बताएँ कि क्या ऐसे घर में सुख, चैन और शान्ति का वास हो सकता है?

पुराणों की कथाओं को पढ़ें तो अनेकानेक प्रश्न उत्पन्न हो सकते हैं परन्तु कोई प्रश्न या शंका करना ही नहीं चाहता क्योंकि सभी जानते हैं कि उनका सटीक उत्तर नहीं मिल सकता और न ही कोई दे सकता है। पुराणों की अनेक कथाएँ, दन्त कथाएँ हैं, उनका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं है और प्रकृति नियम के विरुद्ध होने से सब काल्पनिक और असत्य हैं।

समीक्षा : इस शंका की विस्तृत समीक्षा हम पूर्व ही कर आये हैं कि पुराणकार का यही अभीष्ट था कि वह अर्ध मानव देव का निरूपण करे। इसलिये गणपति के स्वरूप में जो विसंगति दिखाई देती है वह वास्तव में निर्मित की गई है। वहीं उसका उद्देश्य भी स्पष्ट कर दिया गया है।

शंका 14: सिर ही शरीर का संचालक होता है। वही शरीर के व्यक्तित्व का निर्धारण करता है। हाथी का सिर हाथी के गुण धर्म को अपनाएगा, न कि मनुष्य के, किन्तु गणपति का सिर हाथी होने पर भी मनुष्य जैसा आचरण कैसे कर सकता है?

समाधान एवं समीक्षा : इस शंका की विस्तृत समीक्षा हम पूर्व में ही कर आए हैं कि पुराणकार का यही अभिष्ट था कि वह अर्ध-मानव देव का निरूपण करने का प्रयास किया था। इसीलिये गणपति के स्वरूप में जो विसंगति दिखती है वह वास्तव में निर्मित की गई है। वहीं उसका उद्‌देश्य भी स्पष्ट कर दिया गया है।

अन्तिम शंका 15: क्या 'गणपति' ने कभी दूध पिया था? गणपति के दूध पीने के पीछे क्या रहस्य है? क्या मूर्ति भी कभी दूध पी सकती है?

समाधान : कदापि नहीं! सारे जगत् को खिलाने-पिलाने वाला गणपति (ईश्वर) भला क्योंकर अपने भक्तों के हाथों से दूध पीएगा या मोदक खाएगा? क्या उसके दरबार में किसी वस्तु की कमी है? या वह स्वयं नहीं खा या पी सकता है? भूख या

प्यास शरीर के कारण लगती है। आत्मा और परमात्मा दोनों चेतन तत्व हैं, निराकार हैं और क्योंकि जीव शरीर धारण करता है इसलिये उसे भूख-प्यास लगती है। ईश्वर कायारहित है, निराकार है इसलिये उसे जीवित शरीर धारियों की भाँति भूख-प्यास नहीं लगती। रही बात 'गणपति की प्रतिमा की' कि क्या उसने कभी दूध पिया होगा या कभी कोई मिष्टान्न चखा होगा तो इसका उत्तर है – कदापि नहीं! खाना-पीना, चलना-फिरना, रोना-हँसना, बात-चीत करना इत्यादि क्रियाएँ मनुष्यों में हुआ करती हैं, किसी मूर्ति अथवा प्रतिमा में नहीं।

कुछ वर्ष पूर्व ऐसा अवश्य सुनने में आया था कि 'गणपति' की मात्र श्वेत रंग की मूर्तियाँ मन्दिरों में दूध पी रही हैं। दूध पीने का दृश्य जिन लोगों ने अपनी आँखों से देखा या सुना था, वह सब मात्र आँखों का धोखा ही था तथा कुछ लोगों का सोचा-समझा दूसरों को भ्रमित करने वाला एक भयानक षड्यन्त्र था।

वास्तव में दूध सफ़ेद रंग का होता है तथा मूर्ति भी सफ़ेद रंग की, तो दूध का नीचे पात्र में बहकर इकट्ठा होना किसी को नहीं दिखाई दिया। मुम्बई में गणपति के जगत्प्रसिद्ध सिद्धिविनायक मन्दिर ने तो अपने मन्दिर के बाहर एक नोटिस बोर्ड तक लगा डाला, जो टी० वी० के सभी चैनलों में भी दिखाया गया था कि "हमारे मन्दिर में स्थित गणपति की मूर्ति दूध नहीं पी रही है। सारा दूध नीचे नाली में बह रहा है। कृपया इस मन्दिर में मूर्ति को दूध पिलाने का प्रयास न करें।

जब देश-विदेश के गणपति दूध पी रहे थे तब उन सब मूर्तियों का लाईव टेलीकास्ट (Live Telecast) टी० वी० पर सब चैनलों पर दिखाया जा रहा था। वे एक ओर दूध पीती मूर्तियों को दिखाते थे तो दूसरी ओर सारे दूध को नाली में बहता हुआ भी दिखाते जा रहे थे। वस्तुतः वहाँ यह हो रहा था कि जब मूर्ति को दूध पिलाया जा रहा था तो सारा दूध संगे-मरमर की मूर्ति के गले से होकर नीचे की ओर एक पतली धार बनाकर

गिर रहा था जो अन्त में नाली में बह रहा था। कहने की आवश्यकता नहीं है कि कुछ अन्धविश्वासियों ने ऐसी ख़बर उड़ाई और सारी दुनिया उनके झाँसे में आ गई।

समीक्षा : वास्तव में मूर्ति, तस्वीर अथवा प्रतिमा जड़ हुआ करती हैं। मिट्टी की बनी वस्तु में अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र होते हैं अत: उन छिद्रों में किसी सीमा तक तरल पदार्थ जैसे जल सोखने की क्षमता होती है, इस सोखने की क्रिया को अंग्रेज़ी भाषा में 'सर्फ़ेस टेन्शन' (Surface Tension) कहते हैं। आपने देखा ही होगा कि जब ईंट या पत्थर की नई इमारत या मकान निर्माणाधीन होती है तो उसे पक्का करने के लिये उस पर जल छिड़का जाता है अर्थात् पानी पिलाया जाता है। अब पत्थर या मिट्टी की मूर्ति को जल पिलाया जाए तो वह उसे किसी हद तक सोख लेती है। इसका यह अर्थ नहीं निकालना चाहिये कि मूर्ति पानी या दूध पीती है। जड़ वस्तुएँ बेजान, निर्जीव होती हैं, चाहे वह मूर्ति हो या कोई अन्य वस्तु।

पुराणों के रचयिता

जिन लोगों ने पुराणों का अध्ययन नहीं किया है उन से हमारा आग्रह है कि वे पुराणों को अवश्य पढ़ें और निष्कर्ष निकालें कि ऐसी पुस्तकों को रखने का सही स्थान कहाँ होना चाहिये!

अनेक लोगों का यह भी एक बड़ा भारी भ्रम है कि पुराणों के रचयिता महर्षि वेदव्यास हैं - यह सरासर असत्य है और हमारे पूर्व ऋषियों की अवहेलना (बदनाम) करने का षड्यन्त्र रचा गया है। वास्तव में यह सब हमारे स्वाध्याय न करने का फल है। कुछ स्वार्थी लोग हैं जो हमारी सनातन वैदिक सभ्यता और संस्कृति को नष्ट करने का प्रयास कर रहे हैं। अपने ही हाथों से अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं। यह बुद्धिहीन व्यक्तियों का काम है। यही कारण है कि आज हमारे देश में ही, नहीं विदेशों में भी अन्य सम्प्रदाय के लोग हमारी भारतीय सभ्यता और संस्कृति का ख़ूब मज़ाक उड़ाते रहते हैं और हमें शर्म के मारे चुप रहना पड़ता है। परन्तु सत्य कभी छुपता नहीं क्योंकि सत्य सदा सत्य ही रहता है।

वेदव्यास वैदिक संस्कृति के उच्च कोटि के ऋषि (Research करने वाले) थे। इतिहास गवाह है कि उन्होंने बचपन से ही वेदों का गहन अध्ययन किया था। उन्होंने कोई पुराण नहीं लिखा, वे पुराणों के रचयिता नहीं हैं क्योंकि उन्होंने वेदों का भली-भाँति अध्ययन किया था। वे वेद मन्त्रों के द्रष्टा थे तभी तो 'ऋषि' कहलाए। यदि उनकी रचनाओं पर दृष्टि डालें तो उन्होंने कभी भी कोई वेद विरुद्ध बात नहीं लिखी है। महर्षि वेदव्यास के रचे 'वेदान्त दर्शन' (इसे 'पूर्व मीमांसा' कहते हैं - जिसमें मात्र ब्रह्म

का स्वरूप, वेदों का सार तथा वेदों की अन्तिम सीमा अर्थात् मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य अर्थात् परमात्मा तक पहुँचने की विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराई गई है) और 'मीमांसा दर्शन' (जिसको 'उत्तर मीमांसा' भी कहते हैं – जिसमें धर्म, अधर्म अर्थात् शुभाशुभ कर्मों की जानकारी है) विश्व प्रसिद्ध है। ऐसे महान ईश्वर-भक्त ऋषि वेदव्यास क्या कभी अपने पूर्वजों (योगेश्वर शंकर भगवान्, माता पार्वती, विघ्नहर्त्ता गणपति, योगेश्वर श्री कृष्ण भगवान् (इत्यादि) के बारे में इतनी बेहूदा (अश्लील) और आपस में कलह पैदा करने वाली बातें लिख सकते हैं जैसा कि अनेक पुराणों में वर्णित है? कदापि नहीं!! ऐसी बातें कोई सभ्य व्यक्ति तो नहीं पढ़ सकता। हमारे पूर्वजों के बारे में इतनी अनहोनी बातें लिखकर प्रकाशित करना, असत्य एवं मनघढ़ंत कहानियों का रूप देना – यह महामूर्ख वामपन्थियों के काम हैं और हैरानी की बात है कि हमारे सभ्य समाज में रहने वाले अनेक लोग उन बातों पर विश्वास करते हैं।

पुराणों में अनेक स्थानों पर हमारे पूर्वज शिवशंकर जी महाराज को कामी और क्रोधी बताया गया है। 'भोलेनाथ' और 'बम-बम भोले' कहकर शंकर जी की मूर्ति को भांग पिलाने का ढोंग करते हैं। वास्तव में 'भोलेनाथ' के तथाकथित भक्त प्रसाद के रूप में स्वयं भांग के नशे में धुत होते हैं और शंकर भगवान् पर इल्ज़ाम लगाते हैं कि भांग (एक प्रकार का नशीला पदार्थ)'बाबा भोले' का प्रसाद है क्योंकि शंकर जी भांग के शौक़ीन थे और सदा भंग के रंग में रंगे रहते थे। सारे शरीर पर भस्म लगाकर यहाँ-वहाँ घूमते रहते थे। ऋषियों की अनुपस्थिति में उनकी धर्मपत्नियों के साथ ग़लत व्यवहार करते थे। 'शिवलिंग' की कहानी और भी मस्तिष्क को विचलति करने वाली है, अनेक लोगों ने सुनी भी होगी परन्तु उसका वर्णन हम यहाँ नहीं कर सकते क्योंकि उसमें अश्लीलता की सीमा पार कर दी गई है। अतः हम विद्या की देवी 'माँ सरस्वती' का अपमान करना नहीं चाहते, जिससे कि हमारी लेखनी अपवित्र हो जाए।

वैदिक धर्म की संक्षिप्त जानकारी

(सिद्धान्त और मान्यताएँ)

1. सृष्टि रचना : परम पिता परमात्मा अनादि काल से, हर कल्प में, पूर्व की भाँति, सब जीवों के भोग एवं तीनों अनादि तत्त्वों की सार्थकता हेतु, प्रकृति तत्त्व से सष्टि की रचना करता है। ईश्वर के सन्निधान से प्रकृति में विषमता आती है और सृष्टि का निर्माण होता है। जड़ता के कारण सृष्टि स्वयं से कुछ नहीं करती। चेतन की प्रेरणा से ही गतिशील होती है। सृष्टि रचना के क्रम में अन्य सभी जीव-जन्तुओं तथा पशु-पक्षियों इत्यादि उत्पत्ति के अन्त में सर्वश्रेष्ठ प्राणी 'मनुष्य' की उत्पत्ति होती है। सृष्टि में लगातार परिवर्तन होता रहता है तथा प्रलयावस्था में वह अपने मूल कारण प्रकृति में लीन हो जाती है। प्रलय के समय सब आत्माएँ सुषुप्ति अवस्था में रहती हैं। सृष्टि रचना और प्रलय का प्रवाह अनादि काल से जारी है और भविष्य में भी इसी प्रकार चलता रहेगा (ऋ॰ 1/164/38, अथर्व॰ 10/8/25 एवं 13/1/6)।

2. वेद : परम पिता परमात्मा, सृष्टि के आदि में मनुष्यों की उत्पत्ति के साथ-साथ उनके कल्याण व सद्गति हेतु उनकी सर्वाधिक ग्रहण करने की क्षमतानुसार, तत्कालीन सर्वोत्तम अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा नामक चार ऋषियों द्वारा क्रमशः चार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद) उपलब्ध कराता है। वेद मनुष्य मात्र का धर्मग्रन्थ है। वैदिक धर्म की मूल-आधारशिला चार वेद हैं जिनमें तृण से लेकर ब्रह्माण्ड तक का समस्त ज्ञान-विज्ञान मूल रूप में विद्यमान है। वेद का अर्थ

है–ज्ञान और ज्ञान के चार भाग हैं–ऋग्वेद (ज्ञान–काण्ड), यजुर्वेद (कर्म–काण्ड), सामवेद (उपासनाकाण्ड) और अथर्ववेद (ज्ञान–विज्ञान काण्ड)। चारों वेदों में कुल मन्त्र संख्या 20416 हैं जिसमें ऋग्वेद में 10589, यजुर्वेद में 1975, सामवेद में 1875 और अथर्ववेद में 5977 मन्त्र हैं। ईश्वरीय ज्ञान होने से 'वेद' स्वत:प्रमाण है।

3. **ऋषिग्रन्थ** : वेदों के अतिरिक्त उनकी सरल व्याख्या ऋषिग्रन्थों में उपलब्ध है जिन के द्वारा विस्तृत रूप से वेदों का परिज्ञान होता है। वे ऋषिग्रन्थ इस प्रकार हैं–**चार उपवेद** (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद और अर्थवेद), **चार ब्राह्मण** (ऐतरेय, शतपथ, तांड्य जिसे साम भी कहते हैं और गोपथ), **छ: दर्शन शास्त्र** (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त या पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा)। **छ: वेदाङ्ग** (शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष और कल्प) एवं ग्यारह उपनिषद् (ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वर। कालान्तर में ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, अहंकार, हठ, दुराग्रह, स्वार्थ और अज्ञानता के कारण इन ऋषिग्रन्थों में जाने–अनजाने से उनकी Proof reading ठीक प्रकार से न होने के कारण सम्भव है कि उनमें कहीं न कहीं छोटी–मोटी त्रुटियाँ रह जाती होंगी परन्तु वेद ज्ञान सदा एकरस रहता है क्योंकि पूर्व की भाँति वर्तमान में भी ऐसे अनेक पण्डितगण विद्यमान हैं जो वेदों की रक्षा के लिये विविध ढ़ंग से पठन–पाठन करते हैं अत: वेद मन्त्रों में कभी कोई मिश्रण या परिवर्तन करना असम्भव है। चारों वेदों में कुल मन्त्रों की संख्या 20416 है और इन मन्त्रों में कुल अक्षर 864000 हैं। अत: गर्व से कहा जा सकता है कि ईश्वर प्रदत्त ज्ञान – 'वेद' अनादि काल से अखण्ड, अपरिवर्तित तथा एकरस रहता है, आज भी है। ऋषिग्रन्थ परत: प्रमाण अर्थात् वेदों के प्रमाण से ही प्रमाणित होते हैं। वेदानुकूल होने से ऋषिग्रन्थों को प्रमाण में लाया जा

सकता है। अन्तिम प्रमाण 'वेद' है।

4. वैदिक धर्म : वैदिक धर्म अनादि होने से संसार के सब मतों और सम्प्रदायों से अधिक प्राचीन है। इस सृष्टि की रचना को 1960853109 वर्ष हो चुके हैं। संसार में वैदिक धर्म के अतिरिक्त जितने भी मत, मजहब, पन्थ, सम्प्रदाय, गुट एवं तथाकथित धर्म बने हैं, वे सब किसी न किसी पीर, पैग़म्बर, गुरु, सन्त, महात्मा, बाबा आदि के बनाए एवं चलाए हुए हैं तथा उन में समयानुसार फेर-बदल की आवश्यकता पड़ती है। वैदिक धर्म ईश्वरीय ज्ञान होने से अनादि, अपौरुषेय और सदा एकरस रहता है। वैदिक धर्म के सब सिद्धान्त सृष्टि नियमों के अनुकूल होने से विज्ञान की कसौटी पर खरे उतरते हैं जब कि अन्य मतों की अधिकत्तर मान्यताएँ इसके विपरीत ही होती हैं। वेद ईश्वरीय ज्ञान के पूर्ण भण्डार हैं अतः सब मनुष्यों (स्त्री और पुरुष) को 'वेद' को पढ़ने-पढ़ाने तथा सुनने-सुनाने का समान अधिकार है, वह चाहे किसी भी देश, वर्ण, जाति, आश्रम का ही क्यों न हो। वेद मनुष्य मात्र के लिये हैं।

5. त्रैतवाद : वैदिक धर्म त्रैतवाद के सिद्धान्त को मानता है अर्थात् तीन सत्ताएँ अनादि (अजर, अमर, नित्य) हैं तथा एक दूसरे से भिन्न-भिन्न हैं और इनमें परस्पर किसी ने किसी को उत्पन्न नहीं किया है। वे तीन सत्ताएँ हैं—ईश्वर, जीव और प्रकृति (ऋ० 1/164/20, 1/164/44, 10/5/7)। इन में ईश्वर और जीव दोनों स्वभाव से चेतन (ज्ञान-सहित) और निराकार हैं तथा तीसरी प्रकृति स्वभाव से जड़ (ज्ञान-रहित) है।

1. ईश्वर : ईश्वर अद्वितीय एक है और जीव अनेक हैं। वैदिक धर्म में एक अद्वितीय ईश्वर को छोड़ अन्य किसी देवी-देवता की पूजा या उपासना का विधान नहीं है क्योंकि ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य,

पवित्र है। उसी की उपासना करनी योग्य है, अन्य की नहीं। ईश्वर के स्थान पर किसी व्यक्ति, माता, पिता, गुरु, चित्र आदि की उपासना करनी योग्य नहीं है। **2. जीव:** जीव अनेक हैं तथा जीव को ही आत्मा या जीवात्मा कहते हैं। ईश्वर के ज्ञान में जीवों की संख्या सीमित है। जीव अल्पज्ञ है अत: उसके लिये जीवों की संख्या असंख्य है। आत्मा स्त्रीलिंग या पुल्लिग या नपुंसकलिंग नहीं होता। आत्मा शब्द का प्रयोग किसी भी ढंग से कर सकते हैं। जीवों की संख्या सदा एकसी अपरिवर्तित रहती है अत: उसमें वृद्धि या कमी नहीं होती क्योंक आत्मा नित्य है अर्थात् आत्मा अजन्मा, अजर, अमर, नित्य और पवित्र है (अथर्व० 10/8/26), (ऋ० 6/9/4, 6/9/5)। **3. प्रकृति:** वह पदार्थ जिस से सृष्टि की रचना होती है उसे प्रकृति कहते हैं। स्वभाव से जड़ होने से प्रकृति स्वयं से कोई भी क्रिया नहीं कर सकती। प्रकृति अत्यधिक सूक्ष्म होने से भौतिक नेत्रों से नहीं दिखती परन्तु समाध्यावस्था में उसके दर्शन होते हैं। प्रकृति की विकृति को सृष्टि कहते हैं और सृष्टि में भी ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं जो अति सूक्ष्म होने से चर्मचक्षुओं से दिखाई नहीं देती हैं।

6. ईश्वर का निज नाम : ईश्वर के अनेक गुण-कर्म-स्वभाव हैं अत: उसके गौणिक, कार्मिक, स्वाभाविक एवं आलंकारिक नाम भी असंख्य हैं परन्तु वेद तथा आर्ष ग्रन्थों की मान्यतानुसार परमात्मा पिता परमात्मा का सर्वप्रिय निज नाम 'ओ३म्' बताया गया है। **'ओ३म्'** में ईश्वर के असंख्य नामों का समावेश है। 'ओ३म्' शब्द तीन अक्षरों के योग से बनता है, अ+उ+म्। अ और उ की सन्धि करने पर ओ तथा उसमें म् जोड़ने से 'ओ३म्' शब्द बनता है। ओ३म् की गूँज ब्रह्माण्ड में सर्वदा गूँजती है। वेदानुकूल आत्मा का निज नाम 'क्रतु' (कर्मशील) कहा गया है।

7. अवतारवाद : वैदिक धर्म अवतारवाद को नहीं मानता। अवतरण का अर्थ होता है – 'ऊपर से नीचे उतरना'। 'अवतार' कहते हैं–' जो ऊपर से नीचे उतरे'। ईश्वर सर्वव्यापक होने से

सदैव, सर्वत्र विद्यमान होता है अतः वह कभी भी, कहीं भी, किसी भी परिस्थिति में, किसी भी रूप में अवतार नहीं लेता अर्थात् किसी भी योनि में शरीर धारण कर ऊपर-नीचे, यहाँ-वहाँ आता-जाता नहीं है। ईश्वर का अवतरण या अवतार नहीं होता/हो सकता क्योंकि (ऋ॰ 4/1/1, 8/72/3, 6/18/12) (यजु॰ 32/2, 32/3, 40/8) वह परमात्मा अकाय, निराकार, अदृष्ट और विष्णु अर्थात् सर्वव्यापक है।

8. **स्वर्ग-नरक** : स्वर्ग, नरक, वैकुण्ठ आदि कोई स्थान विशेष में नहीं होते। जहाँ सुख होता है उस परिस्थिति को 'स्वर्ग' कहते हैं और इस के विपरीत जहाँ दुःख है उस को 'नरक' कहते हैं। संक्षेप में सुख-विशेष का नाम 'स्वर्ग' है जिसमें मनुष्य पूर्णरूपेण स्वस्थावस्था में जीवन के सुखों को भोगता है तथा इसके ठीक विपरीत दुःख-विशेष का नाम 'नरक' है। स्वर्ग (जन्नत) या नरक (दोज़ख) और कहीं नहीं, इसी संसार में होते हैं।

9. **देवी-देवता** : देवता अर्थात् दिव्य गुणों वाला। स्वर्ग के कोई अलग से देवी-देवता नहीं होते। माता, पिता, गुरु, वैदिक विद्वान्, और पति/पत्नी एक दूसरे के लिये मूर्तिमान देवी-देवता होते हैं। तैंतीस कोटि (स्तर, प्रकार, श्रेणी या करोड़) देवता: **8 वसु** (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा और तारे), **11. रुद्र** (दस प्राणः प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय तथा ग्यारहवाँ आत्मा), **12 आदित्य** (वर्ष के बारह मास), **1 इन्द्र** (बिजली) और **1 प्रजापति** (यज्ञ) ही तैंतीस कोटि देवता होते हैं। देवों का देव अर्थात् सब से बड़ा देव 'महादेव' एक परमेश्वर है। (यहाँ कोटि का अर्थ 'करोड़ संख्या' नहीं अपितु 'श्रेणी' है।)

10. **भूत-प्रेत** : राक्षस, जिन्न, भूत, प्रेत, डायन, डाकिन, चुड़ैल, परी इत्यादि वास्तव में कुछ भी नहीं होते। ये सब मनुष्य के मस्तिष्क के विकार हैं जो ऐसी कल्पना करते हैं। जादू-वादू, टोना-टोटका इत्यादि भी नहीं होते। बिना शरीर के आत्मा कुछ

नहीं कर सकता। एक समय में आत्मा एक ही शरीर में निवास करती है, अनेक स्थानों में नहीं। मृत्यु के पश्चात् दिवंगतात्मा भटकती नहीं है, अपितु वह अपने किये शुभाशुभ कर्मानुसार परमात्मा की न्याय-व्यवस्था में एक नया शरीर धारण करती है। (ईश्वर की कृपा से मात्र गर्भावस्था में माता के गर्भ में एक या उससे अधिक शरीरों का निर्माण होता है और उन शरीरों में आत्मा वसती हैं—**अथर्ववेद: 10/8/28, ऋग्वेद: 6/47/18**)। जो ईश्वर में विश्वास नहीं करता उसकी सोच नकारात्मक हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप ऐसी बेतुकी बातों पर विश्वास करता है।

11. भगवान् : ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शिव, शंकर, राम, कृष्ण, आदि भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के महापुरुष हो चुके हैं, ये ईश्वर या ईश्वर के अवतार नहीं हैं। **"ऐश्वर्यस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः। ज्ञानावैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा"॥ (विष्णु पुराण: 6/5/74)** अर्थात् 1. ऐश्वर्य, 2. वीर्य, 3. यश, 4. श्री, 5. ज्ञान और 6. वैराग्य इन छः गुणों का नाम 'भग' है। जिन महापुरुषों में उपर्युक्त छः गुण विद्यमान होते हैं उनको 'भगवान्' कहते हैं। शुभ गुण-कर्म-स्वभाव के कारण ही महापुरुषों को 'भगवान्' की उपाधि से सम्बोधित किया जाता है। 'भग' अर्थात् भाग्य और 'वान' अर्थात् वाला अतः भगवान् का अर्थ हुआ भाग्यवाला।

12. कर्म-फल : सब मनुष्यों को उसके किये कर्मों का फल ईश्वर द्वारा 'जाति-आयु-भोग' द्वारा प्राप्त होता है, सामान्य भाषा में इसे 'भाग्य' कहते हैं। ईश्वर भाग्यविधाता नहीं, अपितु स्वयं मनुष्य ही अपने भाग्य का विधाता होता है। जो मनुष्य जितना और जैसा कर्म करता है, उसको उतना और वैसा ही फल प्राप्त होता है अर्थात् शुभ कर्मों का फल शुभ (सुख के रूप में) और उसके विपरीत अशुभ कर्मों का फल अशुभ (दु:ख के रूप में) ही मिलता है। कोई कितने भी उपाय, प्रयत्न,

पूजा, पाठ, प्रार्थना इत्यादि करे परन्तु वह ईश्वरीय कर्मफल न्याय व्यवस्था से कभी छूट नहीं सकता। शुभ कर्मों को 'पुण्य' और अशुभ कर्मों को 'पाप' कहते हैं। पुण्य कर्मों के फल 'सुख' और पाप कर्मों के दण्ड 'दुःख' के रूप में प्राप्त होता है।

13. पाप-कर्म : गंगा, यमुना, कावेरी, गोदावरी, क्षिप्रा इत्यादि नदियों के जल में डुबकियाँ लगाने या नहाने से पाप नहीं धुलते अथवा नष्ट नहीं होते, मात्र शरीर का मैल धुलता है। ईश्वरीय न्यायव्यवस्था अटल एवं सब के लिये समान होती है। परमात्मा किसी की सिफ़ारिश से या परिस्थिति में कर्त्ता के शुभाशुभ कर्मों के फल को कम, अधिक अथवा क्षमा नहीं करता। कर्त्ता को अपने शुभाशुभ कर्मों का फल अवश्यमेव भुगतना पड़ता है, उनको भोगे बिना छुटकारा नहीं होता क्योंकि कर्म बीज रूप हैं और दुःख-सुख उसके फल रूप होते हैं। ईश्वरीय न्याय व्यवस्था में सब समान हैं—चाहे वह राजा हो या रंक, सन्त हो या फ़कीर, विद्वान् हो या मूर्ख, धनवान हो या निर्धन। धर्माचरण अर्थात् अपने जीवन में सद्‌गुणों को धारण करने से व्यक्ति पापकर्मों से बच सकता है और शुभ कर्मों में अग्रसर रहता है।

14. तीर्थ : हरिद्वार, काशी, मथुरा, वृन्दावन, बद्रीनाथ, केदारनाथ, कैलाशनाथ, प्रयागराज, उज्जैन, नासिक इत्यादि स्थान तीर्थ नहीं हैं। वास्तव में तीर्थ का अर्थ होता है—जिससे मनुष्य संसार रूपी भव सागर से पार हो जाए। वेदादि आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय, यम-नियमादि अष्टांग योग का अभ्यास, सत्संग, सत्कर्म, निष्काम सेवा, धर्मानुसार आचरण इत्यादि ही तीर्थ होते हैं जिससे मनुष्य सब प्रकार के सांसारिक दुःखों से मुक्त हो जाता है और अन्त में वह सद्‌गति को प्राप्त होता है।

15. आश्रम-व्यवस्था : वैदिक धर्मानुसार मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन को भी चार भागों में बाँटा गया है जिसे 'आश्रम' कहते हैं। पच्चीस वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य का

पालन करना चाहिये, पच्चीस से पचास वर्ष की आयु तक गृहस्थाश्रम, पचास से पचहत्तर की आयु तक वानप्रस्थाश्रम और इस से आगे संन्यासाश्रम में रहकर मनुष्य को अपने जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति करनी चाहिये।

16. वर्ण-व्यवस्था : कर्म के आधार पर मानव समाज को चार भागों में बाँटा गया है जिसे 'वर्ण' कहते हैं। चार प्रकार के वर्ण हैं–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ब्राह्मण का धर्म है–'वेद तथा आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना और पढ़ाना एवं अन्य तीन वर्ण के लोगों को धर्म की जानकारी प्रदान करना'। क्षत्रिय का कर्त्तव्य है–'राष्ट्र की सीमाओं की देखभाल करना तथा देश को विदेशी आक्रमण से सुरक्षित रखना'। वैश्य का काम है–'समाज के सभी वर्गों के लिये जीवनयापन की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति करना' तथा 'व्यापार में वृद्धि कर देश को समृद्ध बनाना'। शूद्र की परिभाषा है–जो पढ़ाने पर भी विद्या ग्रहण करने में असमर्थ होता है अतः उसके लिये यही कार्य बचता है कि वह शेष तीन वर्णों के लोगों की सेवा करके उनके कार्यों में सहायता करे। जन्म और जात से कोई भी मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं होता परन्तु वह अपने-अपने गुण-कर्म-स्वभाव से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र कहाता है। कर्महीन और पथभ्रष्ट होने से एक ब्राह्मण भी शूद्र की कोटि को प्राप्त हो सकता है और उसी प्रकार वेदाध्ययन तथा सत्याचरण से एक शूद्र भी ब्राह्मण बन सकता है। ऊँच-नीच या आर्य, अनार्य का भी यही पैमाना है। जिस व्यक्ति के मन-वचन-कर्म में सत्यता तथा शुद्धता है वह आर्य (श्रेष्ठ) और जिसके मन-वचन-कर्म में असत्यता और अशुद्धता है वह अनार्य (अछूत) कहाता है।

17. पुनर्जन्म : वैदिक धर्म 'पुनर्जन्म' को मानता है (ऋ० 6/47/18) (अथर्व० 10/8/27, 10/8/28, 11/4/6) (यजु० 4/15) अर्थात् मृत्यु के पश्चात् पुनः जन्म होता है। यदि पुनर्जन्म न मानेंगे तो सृष्टि रचना का क्या उपयोग? सृष्टि को कौन भोगेगा?

मात्र एक जीवन में सब कर्मों के फल भोगे नहीं जा सकते। जन्म-जन्मान्तरों के संचित कर्मों तथा वर्तमान जन्म के फलों को भोगने के लिये जन्म लेना ही पड़ता है। मृत्यु अर्थात् समाप्ति पञ्चमहाभूतों से बने शरीर की होती है तथा आत्मा चेतन तत्त्व होने से नित्य, अजर, अमर है और किये शुभाशुभ कर्मों के आधार पर ईश्वरीय कर्मफल 'जाति-आयु-भोग' की न्यायव्यवस्थानुसार पुनः शरीर को प्राप्त होता है। पुनर्जन्म कब, कहाँ, कैसे होगा—यह परमात्मा के अतिरिक्त कोई नहीं जानता। ईश्वर की न्यायव्व्यवस्थानुसार जब जीवात्मा शरीर धारण करता है तो उसे 'जन्म' तथा जब वह उस शरीर को छोड़ता है तो उसे 'मृत्यु' और जन्म-मृत्यु के मध्य काल को 'जीवन' कहते हैं।

18. **यज्ञ** : प्रत्येक परोपकारी कार्य को 'यज्ञ' कहते हैं। यज्ञ के तीन अर्थ होते हैं—1. देवपूजा (अग्निहोत्र द्वारा वातावरण की शुद्धि करना), 2. संगतिकरण (मनुष्य मात्र से मित्रता का व्यवहार करना जिससे संसार में प्रेम और शान्ति बनी रहे) और 3. दान (धार्मिक संस्थाओं एवं ज़रूरतमन्द सुपात्रों की हर सम्भव सहायता करना अर्थात् उनकी योग्य आवश्यकताओं जैसे शिक्षा, धन, वस्त्र, धान्यादि की पूर्ति करना)। विद्या का दान सर्वोपरि होता है। यज्ञ एक कर्मकाण्ड है जिसको करने से 'स्वर्ग' की प्राप्ति होती है। संन्यासी यज्ञ (कर्मकाण्ड) करने के बन्धन से मुक्त है क्योंकि संन्यासी का लक्ष्य 'स्वर्ग' प्राप्ति नहीं अपितु 'मोक्ष' की प्राप्ति करना है।

19. **पञ्च महायज्ञ** : प्रत्येक मनुष्य को पञ्चमहायज्ञ करने चाहियें।

1. **ब्रह्मयज्ञ** : वेदादि शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, सन्ध्योपासना और योगाभ्यास 'ब्रह्मयज्ञ' है। सन्ध्योपासना प्रातः एवं सायं करने का विधान है।

2. **देवयज्ञ** : विद्वानों का संग, सेवा, पवित्रता, दिव्य गुणों का धारण, विद्या की उन्नति तथा प्रातः स्वयं अग्निहोत्र करना

देवयज्ञ है।

3. **पितृयज्ञ** : जिसमें देव अर्थात् विद्वान्, पितर अर्थात् जीवित माता-पिता, गुरु, आचार्य आदि ज्ञानी और अतिथियों की सेवा करना होती है। श्राद्ध और तर्पण के दो भेद होते हैं। क्रिया सत्य को धारण करके की जाए उसे श्रद्धा कहते हैं और श्रद्धा से किया गया कर्म 'श्राद्ध' है। जिस सेवाभाव से जीवित माता-पिता आदि पितर प्रसन्न हों उस कर्म को 'तर्पण' कहते हैं। श्राद्ध एवं तर्पण मृतकों के लिये नहीं, अपितु जीवितों के लिये होता है।

4. **वैश्वदेवयज्ञ** : जब भोजन सिद्ध हो तब जो कुछ भोजनार्थ बने, उसमें से खट्टा, लवणान्न और क्षार को छोड़कर घृत, मिष्टयुक्त अन्न लेकर, चूल्हे से अग्नि अलग धर, मन्त्रपूर्वक आहूत करने को वैश्वदेव यज्ञ कहते हैं।

5. **अतिथियज्ञ** : अतिथि उसे कहते हैं जिसके आने की निश्चित तिथि नहीं हो। यदि कोई धार्मिक, सत्योपदेशक, पूर्ण विद्वान्, परमयोगी संन्यासी गृहस्थ के यहाँ आवे तो उसे पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय जल देकर खानपान तथा उत्तमोत्तम पदार्थों से उसकी सेवा, शुश्रूषा करके उससे सत्योपदेश ग्रहण करें और अपने आचरण सुधारें। इन के अतिरिक्त किसी भी नाम से कोई 'महायज्ञ' नहीं होता।

20. **पूजा-श्राद्ध-तर्पण** : पितरों अर्थात् जीवित माता, पिता, गुरु, विद्वान् अतिथि, पति-पत्नी अर्थात् पति के लिये उसकी धर्मपत्नी और पत्नी के लिये उसका पति-इन पाँच मूर्तिमान देवी-देवताओं की सच्ची भावना (मन-वचन-कर्म) से आदर-सत्कार करना तथा उनकी यथा योग्य आज्ञाओं का पालन करना ही उनकी 'पूजा' कहाती है। सत्य के साथ किये गए कर्म को 'श्राद्ध' कहते हैं। पितरों को हर प्रकार से प्रसन्न रखना ही 'तर्पण' कहाता है। श्राद्ध एवं तर्पण मृतकों का नहीं होता। मृतकों के नाम पर पण्डों, पण्डितों, ब्राह्मणों को भोजन कराना, वस्त्र

तथा धन इत्यादि प्रदान करने का नाम 'श्राद्ध' नहीं, मात्र पाखण्ड और दिखावा है। बेबस, लाचार, असहाय, भूखे तथा निर्धन व्यक्ति को भोजन खिलाना पुण्य का काम है। उपर्युक्त मूर्तिमान देवी-देवताओं की यथायोग्य इच्छाओं की पूर्ति अर्थात् तृप्ति करने को ही 'तर्पण' कहा जाता है।

21. संस्कार : मनुष्य के अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार के समुदाय को अन्तःकरण कहते हैं।) पर कहे, सुने, किये का प्रभाव पड़ता रहता है और बार-बार करने से वही आदतें बन जाती हैं। आदत और संस्कार में बहुत अन्तर है। संस्कारों से मनुष्य सुसंस्कारी अर्थात् उत्तम बनता है। वैदिक धर्मानुसार मनुष्य को 'सोलह संस्कार' अवश्य करने चाहियें क्योंकि इन के करने से आत्मा, मन और शरीर उत्तम बनते हैं। सोलह संस्कार हैं—1. गर्भाधान, 2. पुंसवन, 3. सीमन्तोन्नयन, 4. जातकर्म, 5. नामकरण, 6. निष्क्रमण, 7. अन्नप्राशन, 8. मुण्डन, 9. कर्णवेध, 10. उपनयन, 11. वेदारम्भ, 12. समावर्तन, 13. विवाह, 14. वानप्रस्थ, 15. संन्यास और 16. अन्त्येष्टि। अन्त्येष्टि के पश्चात् ईश्वरीय न्यायव्यवस्थानुसार दिवंगतात्मा अपने किये शुभाशुभ कर्मों के आधार पर अगली योनि में प्रवेश करता है।

22. भक्ष्याभक्ष्य : मनुष्य के लिये शाकाहारी भोजन करना 'भक्ष्य' है तथा मांसाहार करना 'अभक्ष्य' होता है। विज्ञान की कसौटी पर भी परखें तो मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा उसके शरीर की रचना शाकाहारी भोजन के अनुरूप है। जंगल में रहने वाले अनेक मांसाहारी पशुओं के शरीर की बनावट मात्र मांसाहार के अनुरूप होती है। जितने भी शाकाहारी पशु हैं वे भूखे रहेंगे परन्तु किसी भी परिस्थिति में मांसाहार नहीं करेंगे। विज्ञान की कसौटी पर भी परखें तो मनुष्य के शरीर की रचना शाकाहारी भोजन के लिये है। मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहा जाता है परन्तु क्या वह सर्वश्रेष्ठ प्राणी है? मूक पशुओं की हत्या करके उनका मांस भक्षण करना जंगलीपन, अवैज्ञानिक एवं अशास्त्रीय है। युग-प्रवर्तक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती की

दृष्टि में 'जो हिंसा और चोरी, विश्वासघात, छल, कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा, धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है।' **(सत्यार्थप्रकाश: दशम सम्मुलास)।**

23. चमत्कार एवं अन्धविश्वास : चमत्कार नहीं होते और न ही कभी हो सकते हैं। यह सृष्टि ईश्वर के बनाए नियमानुसार ही चलती है। प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध कोई घटना घट नहीं सकती। होनी (प्रकृति नियमानुसार जो होना है) कभी अनहोनी नहीं होती और अनहोनी (प्रकृति नियम के विरुद्ध) भी कभी होनी नहीं हो सकती। प्रकृति नियमानुसार रात्रि के बाद दिन और दिन के बाद रात्रि होती है, इस को कोई टाल नहीं सकता। मृत्यु होने पर फिर वह मृत शरीर जीवित नहीं हो सकता, क्योंकि यह प्रकृति नियम के विरुद्ध है। मनुष्य स्वभाव से अल्पज्ञ है अतः सृष्टि में किसी नई घटना को देखकर वह उसे चमत्कार समझने की भूल करता है। वास्तव में अपने-आप कुछ नहीं होता। प्रत्येक घटना के पीछे कोई न कोई कारण होता है। **कारणभावत्कार्यभावः (वैशेषिक दर्शनः 4-1-3)** अर्थात् कारण होने पर ही कार्य सम्भव होता है क्योंकि बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता। वैज्ञानिक लोग प्रकृति के नियमों को समझने के पश्चात् उसे 'विज्ञान' के रूप में स्वीकार करते हैं। कभी किसी की कही-सुनी बातों पर बिना परीक्षण के विश्वास नहीं करना चाहिये। प्रकृति नियम के विरुद्ध किसी भी बात पर विश्वास करने को 'अन्धविश्वास' एवं 'अन्धश्रद्धा' कहते हैं। मूर्तिपूजा, छुआ-छूत, जाति-पाति, जादू-टोना, डोरा-धागा, कण्ठी-तावीज़, शकुन-अपशकुन, जन्मपत्री, फलित ज्योतिष, हस्तरेखा, नवग्रहपूजा, बलिप्रथा, सतीप्रथा, मांसाहार, मद्यपान, मृतक-श्राद्ध इत्यादि अवैदिक और अवैज्ञानिक बातों को मानने का वैदिक धर्म में निषेध है। अज्ञानता के कारण ही अन्धविश्वास फैलता है।

24. सृष्टिकाल : वैदिक मान्यतानुसार सृष्टि-काल

4,32,00,00,000 (चार अरब, बत्तीस करोड़) वर्ष का होता है जिसे ब्रह्मा का एँक दिन या कल्प कहते हैं और उतना ही समय ब्रह्म-रात्रि का होता है। 360 ब्रह्मदिन एवं ब्रह्मरात्रियों का एक ब्रह्मवर्ष होता है जिसे 'परान्तकाल' या 'मोक्षकाल' भी कहते हैं। मोक्ष की अवधि को 'परान्तकाल' कहते हैं जो 31,10,40,00,00,00,000 (31 नील, 10 खरब और 40 अरब) वर्ष की होती है अर्थात् 'सृष्टि और प्रलय' का क्रम 36000 बार तक चलता रहे, उतने समय तक मुक्तात्मा, परमात्मा के रंग में रंगा रहता है। एक कल्प में चौदह मन्वन्तर (1000 चतुर्युगियाँ) और एक मन्वन्तर में 71 चतुर्युगियाँ होती हैं। एक चतुर्युगी में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलयुग होते हैं जो क्रमशः आते-जाते रहते हैं। (यजु॰ 30/18, अथर्व॰ 10/7/9)

25. मोक्ष : जीवन-मरण के चक्र से परान्तकाल तक मुक्त होना ही मोक्ष कहाता है। मोक्षावस्था में सब दुःखों का नितान्त विच्छेद होता है (ऋ॰ 10/5/5) (अथर्व॰ 10/2/26, 10/2/27, 10/2/30) जिसके लिये 'ज्ञान, कर्म और उपासना' इन तीनों का होना आवश्यक है। जब मनुष्य तीनों अनादि तत्त्वों की सही जानकारी (ज्ञान) प्राप्त करता है तो उसमें विवेक आता है, विवेक से वैराग्य तथा वैराग्य से वह राग-द्वेषादि वासनाओं से मुक्त होता है और ईश्वरोपासना में आनन्द की अनुभूति करने लगता है। यहीं से वह मोक्ष (सब प्रकार के दुःखों से मुक्ति) के मार्ग का राही बनता है। मृत्योपरान्त वह शरीर से मुक्त होकर मनुष्य जीवन के परम लक्ष्य 'मोक्ष' को प्राप्त होता है। मुक्तावस्था में मुक्तात्मा समस्त ब्रह्माण्ड में कभी भी, कहीं भी, पूर्ण स्वतन्त्रता से भ्रमण करता है। परान्तकाल के पश्चात् आत्मा लौटकर पुनः मनुष्य योनि में आता है। स्मरण रहे कि मोक्षावस्था में आत्मा परमात्मा से मिलता है, परमात्मा में नहीं मिलता। दोनों का आपस में मिलन होता है, एक दूसरे में विलय नहीं।

26. पूजा एवं ईश्वरोपासना : 'पूजा' का अर्थ अलग-अलग संदर्भ में अलग-अलग होता है जैसे आज्ञा-पालन करना, सदुपयोग करना, भूख मिटाना, शिक्षा या दण्ड प्रदान करना इत्यादि।

'उपासना' अर्थात् समीप बैठना। ईश्वर की पूजा अर्थात् ईश्वरीय वाणी 'वेद' की आज्ञाओं का पालन करना। ईश्वरोपासना अर्थात् ईश्वर के सान्निध्य में आनन्द की अनुभूति करना। परमात्मा और जीव (आत्मा) दोनों चेतन हैं तथा प्रकृति जड़ है। ईश्वर आनन्दस्वरूप है, जीवात्मा आनन्दरहित है। आत्मा सदा से आनन्द की तलाश में रहता है। 'आनन्द' आत्मा की अनुभूति का विषय है। आनन्द प्रकृति का गुण नहीं, परमात्मा का गुण है जिसकी अनुभूति मात्र चेतन आत्मा ही कर सकता है। जड़ वस्तुओं की उपासना अर्थात् उनके समीप रहने से या सम्पर्क में आने से आनन्द की अनुभूति नहीं हो सकती इसलिये वैदिक धर्म में मूर्तिपूजा निषेध है। जड़ वस्तुओं की उपासना या मूर्तिपूजा से मस्तिष्क में जड़ता, नास्तिकता एवं समय का दुरुपयोग होता है। ईश्वर के गुणों का ध्यान करना, उन गुणों को अपने जीवन में धारण करना ही ईश्वर की सच्ची 'उपासना' है जिससे मनुष्य सदा सुखी और आनन्दित रहता है।

27. **नमस्ते** : हम जिस व्यक्ति का आदर-सम्मान करते हैं, उसका अभिवादन करना चाहिये--यह वैदिक संस्कृति एवं सभ्यता का एक प्रतीक है। वैदिक धर्मी जब परस्पर मिलते हैं तो एक दूसरे से हाथ जोड़कर 'नमस्ते' बोलकर अभिवादन करते हैं। 'नमस्ते' verb है और 'नमस्कार' noun है। अत: जब किसी का अभिनन्दन करें तो उसे 'नमस्कार' नहीं 'नमस्ते बोलना चाहिये अर्थात् 'मैं आपका अभिनन्दन करता/करती हूँ'।

28. **प्राकृतिक अटल नियम** : (1) ईश्वर के बनाए प्रकृति के नियम अटल, अपरिवर्तनशील होते हैं। कोई भी (बाबा, बापू, संत, फ़कीर, महात्मा, गुरु, पीर, पैग़म्बर, भगवान् इत्यादि) उनका उल्लंघन नहीं कर सकता। (2) जो वस्तु बनती है, उसका विनाश (नष्ट नहीं, रूपान्तर) होता है। (3) जिसकी आदि है उसका अन्त निश्चित है। जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु भी अवश्यमेव होती है (ऋ० 1/41/1)। जन्म और मृत्यु का अटूट सम्बन्ध है। जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु होनी ही है तथा जिसकी मृत्यु हुई है, उसका जन्म अवश्य ही होगा। (4)

जिसका आरम्भ होता है उसका अन्त अनिवार्य है अतः मोक्ष काल सदा के लिये नहीं होता, उसका भी अन्त होता है। (5) आत्मा अनादि, अमर और नित्य है। मृत्यु शरीर की होती है जो अन्त्येष्टि संस्कार के दौरान अग्नि के द्वारा अपने कारण पञ्च-महाभूतों में रूपान्तरित हो जाता है। (6) जब तक आत्मा शरीर में रहता है तब तक उसमें कार्य करने की क्षमता रहती है और जैसे ही वह शरीर को त्यागता है उस शरीर की मृत्यु होती है अर्थात् उस मृत शरीर में कार्य करने की क्षमता समाप्त हो जाती है। (7) किया हुआ कोई भी कर्म बेकार नहीं जाता, उसका फल अवश्यमेव प्राप्त होता है। कब, कहाँ, क्यों और कैसे—मात्र सर्वज्ञ परमात्मा ही जानता है। कर्मफल के सब रहस्यों को समझना अल्पज्ञ मनुष्य की समझ के बाहर है। (8) सामान्य तौर पर, शुभ तथा अशुभ कर्मों के फलस्वरूप मनुष्य को सुख और दुःख प्राप्त होते हैं अर्थात् शुभ कर्मों का फल सुख और अशुभ कर्मों का दण्ड दुःख होता है। (9) यह प्राकृतिक नियम एवं वैज्ञानिक तथ्य है कि 'चेतन तत्त्व से जड़ वस्तु की उत्पत्ति अथवा जड़ से चेतन पदार्थ की उत्पत्ति नहीं हो सकती" यह असम्भव है। (10) स्त्री-पुरुष के मिलन बिना सन्तानोत्पत्ति नहीं हो सकती। सन्तानोत्पत्ति के लिये पुरुष के वीर्य और स्त्री के रज का संयोग परमावश्यक है। (11) **कारणभावत्कार्यभावः (वैशेषिक दर्शनः 4-1-3)** अर्थात् कारण होने पर ही कार्य सम्भव होता है क्योंकि बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता। (12) न तु कार्याभावात्कारणाभावः (वै० द० 1-2-1) अर्थात् कार्य के अभाव से कारण का अभाव होता है। (13) कारणाऽभावात्कार्याऽभावः (वै० द० 1-2-1) अर्थात् कारण न होने से कार्य कभी नहीं होता। (अधिक जानकारी के लिये मेरी पुस्तक 'शंका समाधान' एवं 'अन्धविश्वास निर्मूलन' को अवश्य पढ़ें।)

यह पुस्तक मेरी दृष्टि में

श्री मदन रहेजा जी ने 'वैदिक गणपति' नामक पुस्तक बहुत ही चिन्तनपूर्वक तथा लोगों की भावनाओं को धन में रखकर लिखी है। इसमें विद्वान् लेखक ने परिश्रम करके शिव-पुराण तथा ब्रह्म-वैवर्त पुराण में वर्णित गणपति की उत्पत्ति के विषय में उल्लेख की गयी कथाओं की समीक्षा की है एवं अन्त में गणपति के वास्तविक वैदिक, वैज्ञानिक एवं सार्वजनिक स्वरूप का निरूपण का सत्यासत्य को दर्शाया है।

आज के वैज्ञानिक युग में धर्म का स्वरूप भी वैज्ञानिक होना चाहिए। उसमें यदि सत्य की सुगंध होगी तो धर्म महक उठता है। यदि उसमें असत्य का अंधकार समा जाए तो सारा धर्म ही अन्धविश्वास के अंधेरे में भटक जाता है।

विद्वान् पाठकों का यह कर्त्तव्य बनता हे कि वे इस पुस्तक को सत्य की खोज करने के लिए पढ़ें तथा गणपति के सच्चे स्वरूप को समझें और अपनाएँ। लेखक ने इस पुस्तक में शंका समाधान के माध्यम से उन सब शंकाओं का समाधान किया है तथ गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन किया है जिसे एक सामान्य व्यक्ति भी जानना चाहेगा। इसलिए यह पुस्तक बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्री, पुरुष सबके लिये पठनीय बन गई है।

कुछ व्यक्तियों को ऐसा लग सकता है कि इस पुस्तक में खण्डन का सहारा लेकर लोगों की आस्था एवं श्रद्धा पर प्रहार किया गया है। किन्तु यदि निष्पक्ष दृष्टि से देखें तो उन्हें मात्र सत्य के ही दर्शन होंगे। यह पुस्तक किसी दुर्भावना से प्रेरित होकर नहीं बल्कि सद्भावना से ही लिखी गयी है।

समाज में जिन श्लोकों से गणपति की आराधना की जाती है उन श्लोकों का अर्थ बहुत विस्तार तथा सुन्दरता के साथ किया गया है। ऐसा अर्थ आजकल की प्रचलित किसी भी पुस्तक में उपलब्ध नहीं होता।

मूर्तियाँ हमेशा से ही लोगों के लिए प्रेरणास्रोत रही हैं। मूर्तियों का दिव्यरूप हज़ारों अनकही बातें कह देता है। विद्वान् लेखक

श्री मदन रहेजा जी ने गणपति की मूर्ति से निकलनेवाले संदेश का निरूपण बहुत ही सुन्दरता से किया है। उदाहरण के तौर पर चूहे की सवारी कमज़ोर को सहारा देने की प्रेरणा देती है। बड़ा मस्तिष्क बड़े एवं गंभीर विचार का द्योतक है। छोटी आँखें सूक्ष्म दृष्टि की ओर इशारा करती हैं। बड़े कान हमें सबकी बात सुनने की प्रेरणा देते हैं। इस प्रकार के अनेक संदेश हैं जो इस पुस्तक में उपलब्ध हैं। वस्तुतः गणपति की सम्पूर्ण मूर्ति ही दिव्य प्रेरणा प्रदान करती है। लेखक इस वर्णन में पूर्ण सफल रहे हैं। उन्होंने कहीं भी किसी मूर्ति का खण्डन नहीं किया है। उन्होंने इस पुस्तक में तीन-चार बार इस बात को दुहराया है कि वे किसी धर्म अथवा सम्प्रदाय की भावनाओं को ठेस पहुँचाने की दृष्टि से नहीं बल्कि सत्य-असत्य का दिग्दर्शन कराने के लिये प्रत्येक विषय का निरूपण कर रहे हैं।

वैदिक गणपति का वर्णन करते समय लेखक ने गणपति की मूर्ति से ही निराकार ईश्वर, यज्ञाग्नि तथा राजा के गुण, कर्म आदि विषयों का निरूपण किया है। ईश्वर किस प्रकार निराकार होकर कण-कण में व्याप्त हो रहा है? यज्ञाग्नि सदैव ऊर्ध्वमुखी बनकर निरन्तर उन्नति की प्रेरणा देती रहती है। यज्ञ क्या है? किसे कहते हैं? उसे प्रजा-पालक क्यों कहते हैं? इत्यादि। राजा या राष्ट्रपति को किस प्रकार प्रजा का पालक होना चाहिए? शुभकर्म हमें किस प्रकार सुख की ओर ले जाते हैं? इत्यादि अनेक विषयों को गणपति से मिलने वाली प्रेरणा का स्रोत बताया है।

जैसे कोई व्यक्ति बालू में शक्कर की श्रद्धा करके दूध में डालकर नहीं पीता उसी प्रकार ईश्वर के किसी भी रूप पर बिना सोच-विचारे या जाने-समझे श्रद्धा कर बैठना भी समझदारी नहीं होती। सत्य के प्रति ही विश्वास करना ही 'श्रद्धा' कहाती है। इसलिए सबसे पहले सत्य को जानना आवश्यक होता है, जानने के बाद ही उसको मानना चाहिये तथा आचरण में लाना

चाहिये।

जिस कार्य के करने से थोड़ी सी भी शंका, भय और लज्जा होती हो तो उसे तुरन्त रोक देना चाहिये क्योंकि वह पापकर्म कहाता है, जिसका फल कर्त्ता को दुःख के रूप में अवश्यमेव भुगतना पड़ता है। और जिस काम के करने में निःशंका, निडरता तथा स्फूर्ति की भावना जागृत होती है उस कर्म को अवश्य करना चाहिये क्योंकि वह पुण्यकर्म की श्रेणी में आता है जिसका फल जीवन में सुख प्रदान करता है।

वह श्रद्धा ही क्या जो अन्धविश्वास पर आधारित हो?

वह भक्ति ही क्या जिसका कोई आधार ही न हो?

डॉ० गौतम श्रीमाली

(वैदिक प्रवक्ता - मुम्बई)

गणपति स्तुति (भजन)

राग : अहीर भैरव, तर्ज़ : मेरी बीना तुम बिन रोये
(फ़िल्म : देख कबीरा रोया)

रचनाकार : श्री ललित मोहन साहनी (मुम्बई)

हे देव! गणपति आओ, हे देव! हे देव! हे देवता! मेरी देव पुरी को सजाओ।।1।।

प्रजापति हो विश्व सम्राट् हो, पालक रक्षक हमारे।
सूँड तुम्हारी ज्वाला सम है, अग्रणी बनके सँवारे।
हमें उन्नत श्रेष्ठ बनाओ।।2।।
हे देव! हे देव! हे देवता! मेरी देवपुरी को सजाओ।

उदर तुम्हारे विश्व व्याप्त है, शरण में सब हैं तुम्हारे।
अश्रुत कर्ण से सब की सुनते, बड़े हैं कर्ण तुम्हारे।
सत्य ज्ञान की बात सुनाओ।।3।।
हे देव! हे देव! हे देवता! मेरी देवपुरी को सजाओ।

चार हाथ सम चार दिशायें, जिसमें तुम्हारी प्रजायें।
चारों ओर से करतीं रक्षा, मारग सही दिखायें।
इन्हें मित्र हमारा बनाओ।।4।
हे देव! हे देव! हे देवता! मेरी देवपुरी को सजाओ।

एक-दन्त इक रस आनन्घन, कर दो आनन्द वर्षा।
तेरे मिलन का हे प्रभु मेरे, बार-बार मन तरसे।
कृपा अपनी बरसाओ।।5।।
हे देव! हे देव! हे देवता! मेरी देवपुरी को सजाओ।

दूर दृष्टि के नयन तुम्हारे, न्याय दया के द्योतक।
काले तिल से सजी है प्रतिमा, शिव सुन्दर तुम्हारी रोचक।
हमें मूषक दास बनाओ।।6।।
हे देव! हे देव! हे देवता! मेरी देवपुरी को सजाओ।

रंग केसरी अग्नि स्वरूप हो, चार वेदों के ज्ञाता।
शंख तुम्हारा सामवेद है, महिमा गीत सुनाता।
उद्-बोध गीत सुनाओ ।।7।।
हे देव! हे देव! हे देवता! मेरी देवपुरी को सजाओ।

मोदक रूप संसार तुम्हारा, मनोरञ्जन देखा।
एक सूत्र में बाँधे सबको, करते हो दुःख भञ्जन।
सब क्लेश दुःखों को मिटाओ।।8।।
हे देव! हे देव! हे देवता! मेरी देवपुरी को सजाओ।

ओ३म् नाम में तुम हो समाये, दर्शन दिव्य दिखाये।
हर एक कर्म के आदि में ही, नाम तेरा ही गायें।
हमें साधक सच्चा बनाओ।।9।।
हे देव! हे देव! हे देवता! मेरी देवपुरी को सजाओ।

ओ३म् नाम में तुम हो समाये, दर्शन दिव्य दिखाये।
हर एक कर्म के आदि में ही, नाम तेरा ही गायें।
हमें साधक सच्चा बनाओ।।10।।
हे देव! हे देव! हे देवता! मेरी देवपुरी को सजाओ।

श्री मदन रहेजा कृत शंका-निवारक पुस्तकें

बाल शंका समाधान

यज्ञ क्या ? क्यों ? कैसे ?

एक वाक्य में समाधान

वैदिक गणपति

अन्धविश्वास निर्मूलन

शंका समाधान

सुविचार

वेदों की वाणी सन्तों की ज़ुबानी

Mystery of Death

Children's Quest

Quest : The Vedic Answers

Back to the Vedas

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द
4408, नई सड़क, दिल्ली-110 006
दूरभाष : 23977216
e-mail : ajayarya16@gmail.com
Website : www.vedicbooks.com

मदन रहेजा

'वैदिक गणपति' पठनीय क्यों है?

अनादि काल से समस्त विश्व में 'गणपति की पूजा' की जाती है क्योंकि उनके पूजन से ही विघ्नों का नाश तथा मंगल की प्राप्ति होती है। बहुत कम लोग ही गणपति के सच्चे स्वरूप को जानते हैं। विद्वान् लेखक श्री मदन रहेजा ने इस पुस्तक के माध्यम से 'गणपति का वास्तविक स्वरूप', 'गणपति की पूजा पद्धति' तथा उनसे सम्बन्धित अनेक रहस्यों का वैदिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सरल भाषा व सुन्दर शैली में वर्णन किया है।

गणपति का सच्चा स्वरूप है-निराकार परमात्मा। वह सर्वव्यापक होने से सब के हृदय में रहकर आत्मबल और आत्मविश्वास प्रदान करता है। जो व्यक्ति सच्चे ईश्वर का पूजन करता है उसके जीवन में सदा सर्वदा मंगल ही होता है। यही सच्चे गणपति [illegible] का फल है जो सबको विघ्नविनायक बना दे[illegible]

[illegible] ज्ञान के युग में तर्क और ज्ञान शक्ति दोनों ही बराबर काम करती हैं। यदि हम तर्क के साथ-साथ ज्ञान (धर्म) शक्ति का भी प्रयोग करें तो अपने दिल और दिमाग से गणपति के सच्चे स्वरूप को स्वीकार कर सकते हैं। फिर हमारी की गई 'सच्चे गणपति की उपासना' सफल होगी। यह पुस्तक तर्क एवं ज्ञान के आधार पर अनेक गूढ़ रहस्यों का स्पष्टीकरण करती है-इसलिए सर्वहितकारी, अवश्य पठनीय एवं संग्रहणीय है।

www.vedicbooks.com